महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० **अंक** : ०५

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: चैत्र कृष्ण २०७४

कलि संवत्: ५११८

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११८

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

मार्च प्रथम २०१८

अनुक्रम

०१. कश्मीर : समस्या और समाधान	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. महाकवि दयानन्द-आक्षेप और समाधान	पं. वीरेन्द्र	१४
०५. प्राणोपासना-८	तपेन्द्र वेदालङ्कार	१८
०६. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२२
०७. वैदिक 'संध्या'	सुन्दरलाल कथूरिया	२४
०८. मुक्ति का द्वार	स्वामी सत्यव्रतानन्द	२८
०९. महापुरुषों का अपमान कब तक...	चन्द्रशेखर लोखंडे	३४
१०. श्री वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी...	पं. युधिष्ठिर मीमांसक	३८
११. शङ्का समाधान- २०	डॉ. वेदपाल	४०
१२. संस्था-समाचार		४१
१३. आर्यजगत् के समाचार		४१

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

- उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ -
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

कश्मीर : समस्या और समाधान

भारत के भौगोलिक मानचित्र में कश्मीर मुकुट के रूप में विद्यमान है। अपनी प्राकृतिक छटा और सांस्कृतिक धरोहर के लिए कश्मीर प्राचीनकाल से ही प्रासंगिक बना रहा है। निसर्गप्रेमियों और साहित्यकारों ने इसे पृथ्वी पर स्वर्ग की संज्ञा से अभिहित किया, लेकिन दुर्भाग्य यह रहा कि भारत की स्वतंत्रता के बाद कश्मीर भारत और पाकिस्तान के मध्य हमेशा अशांति का क्षेत्र बना रहा। यह कहना उचित होगा कि विभिन्न राजनीतिक दलों ने स्वतंत्रता के पश्चात् अपने निहित स्वार्थों के लिए कश्मीर समस्या को हमेशा बनाए रखा। आतंकवाद की हिंसा से ग्रस्त अशांति के क्षेत्र कश्मीर के सांस्कृतिक सौहार्द की परम्परा, वहाँ की मिलनसारिता, आम जनता का प्रेम और स्नेह विगत वर्षों में तार-तार हुआ है, परस्पर अविश्वास की खाई निरन्तर चौड़ी की जा रही है। पाकिस्तान के क्रूर कृत्य ही भारत के इस क्षेत्र में अशांति के जनक रहे हैं। यद्यपि कश्मीर नरेश महाराजा हरिसिंह ने भारत में विलय के प्रपत्र पर हस्ताक्षर किए, लेकिन उसके साथ युद्ध की विभीषिका, वल्लभभाई पटेल की राजनीतिक सूझबूझ और तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू द्वारा कश्मीर प्रकरण को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाना, ये प्रकरण हम सब भली प्रकार जानते हैं।

तथाकथित धर्मनिरपेक्षता की आड़ में इस मुद्दे को लेकर राजनीतिक दलों ने जिस प्रकार अपनी रोटियाँ सेकीं हैं, वे इस तथ्य की साक्षी हैं कि कश्मीर का आर्थिक विकास विगत 70 वर्षों में भारत के अन्यान्य भागों के समान हो नहीं सका है। विभिन्न भौगोलिक विषमताओं के कारण परिवहन के साधन, शिक्षा के केन्द्र, चिकित्सालय, रोजगार के विभिन्न उपाय तथा जीवन को समुन्नत करने के साधनों का विकास इस क्षेत्र में हो नहीं पाया यद्यपि केन्द्र से इस राज्य को निरन्तर प्रभूत आर्थिक सहायता दी जाती रही और यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए कि विगत वर्षों में जिन-जिन राजनीतिक दलों की सरकारें वहाँ रहीं वे सब इसके लिए जिम्मेदार हैं। कश्मीर वस्तुतः शेख अब्दुल्ला की वंश-परम्परा के रूप में रहते हुए कांग्रेस के समर्थन एवं नेतृत्व दोनों ही दृष्टि से उसके राजनीतिक कार्यक्रमों का क्षेत्र रहा। मुख्य रूप से 1980-90 के दशक में पाकिस्तान-प्रायोजित आतंकवाद कश्मीर के भाग्य पर एक नासूर के रूप में विकसित हुआ और जिसके कारण कुख्यात आतंकवादी संगठन लश्कर-ए-तैयबा, हिजबुल मुजाहिदीन, अलबदर, जैश-ए-मोहम्मद इत्यादि ने अपने पैर गहराई तक जमाने का काम किया। इस स्थिति से निपटने के लिए पूर्ववर्ती सरकारों ने न तो राजनीतिक समाधान खोजे और न ही आर्थिक और सामाजिक असमानता के बिन्दुओं को ही ध्यान में रखा।

कश्मीर में विगत लगभग 30 वर्षों से आंतकवाद की फसल बोई और काटी जा रही है, जिसमें सबसे बड़ा कारक राजनीतिक दलों की तुच्छ राजनीति है। वर्तमान केन्द्र सरकार के 2014 में सत्ता में आने के बाद कश्मीर समस्या के समाधान के लिए एक स्पष्ट और निर्णायक भूमिका का निर्वाह प्रधानमत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में किया गया। कश्मीर में उग्रवादियों और अलगाववादियों द्वारा भारत में पाकिस्तान के संकेत पर अव्यवस्था, हिंसा और राष्ट्रद्रोह की जो कुटिल नीति प्रभावशाली रही है और उस संदर्भ में समय-समय पर केन्द्र सरकार ने इससे पूर्व जो भूमिका निभाई थी वह केवल तुष्टीकरण के अतिरिक्त कुछ नहीं थी। इसके लिए सीमा पार से पाकिस्तान द्वारा निरन्तर **टैरर फंडिंग** की जा रही है। इसी का यह परिणाम है कि पूर्व सरकारों के इशारे पर सेना के हाथ बाँध दिए गए थे, सेना पर पत्थरबाजियाँ हो रही थी, सैनिक शहीद हो रहे थे, लेकिन और कुछ न हो पा रहा था। वर्तमान में केन्द्र की सख्त नीति का ही परिणाम था कि जब आतकंवादियों से सख्ती से निपटने के लिए मुठभेड़ में उनके विरुद्ध जवाबी कार्रवाई की गई, तो आतंकवादी बुरहान बानी की मृत्यु के बाद भारत के राजनीतिक दलों में भी बैचेनी पैदा हुई, पाकिस्तान में तो बैचेनी स्वाभाविक थी। उड़ी और पठानकोट में किए

गए आतकंवादी हमलों से तथा स्कूली छात्र-छात्राओं को भड़काकर पत्थरबाजी या गोलीबारी कराना, पाकिस्तानी झंडे को फहराकर उसके जिंदाबाद के नारे लगाना यह सामान्य घटनाएं थीं। स्टिंग ऑपरेशन के बाद एन.आई.ए (नेशनल इन्वेस्टीगेशन एंजेसी) की जाँच के बाद और नोटबंदी से घबराए हुए टैरर फंडिंग से अलगाववादी और आतंकवादियों में भय व्याप्त हुआ। दूसरी ओर अर्द्धसैनिक बलों तथा सेना ने इन आतंकी ठिकानों पर जिस प्रकार हमला बोला, पाकिस्तान क्षेत्र में घुसकर सर्जिकल स्ट्राइक की और नियंत्रण रेखा के पार बमबारी की। यह अपने तरीके का पहला अभिनव प्रयास था जिसने भारतीय सेना के हौंसलों को बुलंदी तक पहुंचा दिया। वर्तमान भारत सरकार ने पाकिस्तान से सदाशयता के विभिन्न प्रयास किए, यहाँ तक कि प्रधानमंत्री मोदी सौमनस्य का परिचय देते हुए अनायास तत्कालीन पाकिस्तानी प्रधानमंत्री की पोती के विवाह के समय आनन-फानन में पाकिस्तान पहुँचे। क्योंकि उन्होंने लाल किले की प्राचीर से घोषणा की थी कि गोलियों, गालियों से कश्मीर समस्या का हल संभव नहीं होगा। कुछ मुट्ठीभर आतंकवादी, जो पाकिस्तान समर्थित हैं और यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों की उनके प्रति सदाशयता को केन्द्र ने सख्ती से अनुभव किया और इन आतंकवादियों को एक ओर गोली का जवाब गोली से दिया तो दूसरी ओर इनकी टैरर फंडिंग पर लगाम लगाकर अलगाववादी संगठनों के नेताओं पर तीखी और कठोर कार्रवाई की जो इससे पूर्व कभी नहीं की गई थी। इनमें से कई नजरबंद हैं और कुछ जेल में हैं।

कश्मीर समस्या भारत की आजादी के साथ ही व्याधि-रूप में खड़ी हुई और तत्कालीन प्रधानमंत्री की अदूरदर्शी और पक्षपाती नीतियों के कारण यह समस्या समाप्त होने की अपेक्षा निरन्तर बढ़ती ही रही। स्थिति यह है कि यह समस्या आज भारत की अखंडता के लिए चुनौती बनती जा रही है। मुस्लिम साम्राज्यवाद के पक्षपाती हुर्रियत नेताओं को जिस प्रकार राजनीतिक दलों का संरक्षण प्राप्त होता है, पाकिस्तानी दूतावासों में उनकी आवभगत की जाती है उससे यह समस्या और भी बढ़ी। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी अत्यधिक राजनीतिक नम्रता का परिचय देते हुए वार्ता का कदम बढ़ाया था और अब दिनेश्वर शर्मा, पूर्व खुफिया ब्यूरो के प्रमुख, जिनका कश्मीर से 1992 से ही संबंध रहा, उनके और राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोबाल के प्रयासों से एक नई राजनीति प्रारम्भ की गई है। निश्चय ही यह नई पहल अलगाववादियों तथा विभिन्न राजनीतिक दलों, संगठनों से वार्ता कर इस समस्या का सकारात्मक हल निकालने की प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की पहल स्तुत्य है, लेकिन आतंकवादियों का सफाया करने का मिशन कठोरता के साथ जारी रहना चाहिए। श्री शर्मा का जम्मू कश्मीर के लगभग सभी संगठनों से गहरा संबन्ध रहा है इसीलिए पृथकतावादियों और आतंकवाद के गढ़ से बन्धुत्व की राह कितनी आसान हो सकेगी, यह भविष्य ही बतायेगा। चिन्तनीय यह है कि जम्मू कश्मीर में पहली बार भाजपा और पीडीपी की सरकार है जिसे कट्टरपंथी और अलगाववादी किसी भी दृष्टि से पसंद नहीं करते। पीडीपी शस्त्र बल विशेषाधिकार कानून (अफ्सपा) की समाप्ति या सीमित करने की पक्षधर हैं जैसा कि मुख्यमंत्री श्रीमती महबूबा मुफ्ती ने अपनी वार्ताओं में संकेत भी दिया है। यह उनकी राजनीतिक मजबूरी भी है। लेकिन अभी स्थिति ऐसी नहीं है कि इस कानून पर ढिलाई की जाए। सेना प्रमुख ने ऐसा संदेश भी दिया है।

आर्यसमाज सामाजिक और धार्मिक आंदोलन का पुरोधा रहा है, लेकिन उसके राजनीतिक सरोकार हमेशा बने रहे हैं, क्योंकि राष्ट्रप्रेम उसके रक्त में व्याप्त है। भारतीय संस्कृति एकांगी होकर नहीं चलती वह सर्वांगपूर्ण है। महर्षि दयानन्द के **सत्यार्थ-प्रकाश** और **आर्याभिविनय** में पदे-पदे शासन से संबंधित विचार उद्‌बुद्ध होते रहे हैं, वे संकेत मात्र हैं। यदि राष्ट्र है तो समाज और धर्म होगा और जब राष्ट्र ही नहीं होगा तो समाज और धर्म भारतीय संस्कृति के रूप में आकार नहीं ले पाएगा। यह विगत 1000 वर्ष की गुलामी के समय हम भली प्रकार देख चुके हैं। आवश्यकता है कि आर्यसमाज के स्वयंसेवक, संन्यासी

जम्मू-कश्मीर के सामाजिक ढाँचे को एक नया आयाम दें और उनके प्राचीन इतिहास को वर्तमान संदर्भों में नई ऊँचाइयों तक पहुँचायें। सरकार की ओर से **ऑपरेशन ऑल आऊट** जारी रखकर ही आतंकी फंडिंग के विरुद्ध सामाजिक जागृति भी करनी होगी, जिसमें आर्यसंस्थाओं का भी महत्त्व होगा और समाजिक सम्मेलनों की भी भूमिका होगी। क्रियात्मक क्षेत्र में आर्यसमाज को केवल अब बौद्धिक विवेचन तक ही सीमित न रहना होगा, अपितु विभिन्न संगठनों द्वारा, सम्मेलनों द्वारा शैक्षिक संस्थाओं द्वारा, सकारात्मक माहौल बनाने में अपनी भूमिका निभानी होगी।

संवैधानिक दृष्टि से 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अंतर्गत महाराजा हरिसिंह जम्मू-कश्मीर राज्य के एकमात्र प्राधिकारी थे जिसमें लद्दाखी क्षेत्र भी सम्मिलित था। इसलिए भारत में विलय कराने का अधिकारी कोई था तो महाराजा हरिसिंह थे। उन्होंने भारत में विलय के पत्र में स्पष्टत: स्वतंत्रता अधिनियम की शर्तों को ही स्वीकार किया था। उन्होंने कहा था कि **''मैं एतद् द्वारा 17 अक्टूबर 1947 को विलय के इस लेख पत्र को स्वीकार करता हूँ।''** इसके आधार पर भारत में विलय की स्वीकृति महाराजा ने स्वयं दी थी। केन्द्र के सहयोग से शेख अब्दुल्ला द्वारा व्यक्तिगत द्वेष भावना से महाराजा हरिसिंह के अस्तित्व को नकारने और उनके अपमान की कितनी ही घटनाएं दृष्टिगोचर होती हैं। महाराजा हरिसिंह द्वारा 6 मई, 1949 को लिखे गए पत्र में उल्लिखित है कि राजभक्ति की शपथ लेने के बावजूद भी शेख अब्दुल्ला निरन्तर राज्य के प्रति निष्ठा का उल्लंघन करते रहे। उन्होंने यह भी लिखा था कि **''वह मेरी निन्दा व दोषारोपण के अभियान में लगे हुए हैं।''** इन घटनाओं से स्पष्ट है कि महाराजा हरिसिंह के विरुद्ध शेख अब्दुल्ला को केन्द्र द्वारा दी जा रही शह के कारण जम्मू और कश्मीर की प्रशासनिक व्यवस्था में अवरोध होना स्वाभाविक था और इन सब की जानकारी पाकिस्तान को थी और तभी से पाकिस्तान का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप बना रहा। जिसकी परिणति आज के जम्मू कश्मीर की है जहाँ हिंसा की निरन्तर घटनाएं भारतीय संघ से विरुद्ध जम्मू-कश्मीर के लोगों को भड़काना और अलगाववादी तथा आतंकवादी घटनाओं को प्रश्रय देना है।

केन्द्र में नयी सरकार आने के बाद अखिल भारतीय सेवाओं और राज्य सेवाओं में कश्मीर के लोगों का उल्लेखनीय सफलता प्राप्त करना, जाहिरा वसीम का फिल्मों में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करना, क्रिकेट में भारतीय टीम में चयन आदि अखिल भारतीय स्तर पर जम्मू कश्मीर की भागीदारी को स्पष्ट करते हैं। वहीं सर्वोच्च न्यायालय में धारा 35-ए पर बहस की जा रही है, ताकि जम्मू और कश्मीर की संवैधानिक स्थिति को भली प्रकार परिभाषित किया जा सके। जबकि जम्मू कश्मीर धारा 370 को हथियार बनाकर बार-बार केन्द्र को धमकाता है। यह स्थितियाँ न तो जम्मू कश्मीर और न ही भारत के लिए सुखद स्थिति है। भारत के प्रत्येक क्षेत्र में शांति और सद्भाव के साथ विकास की जब परम्पराएँ स्वीकार की जाती हैं तो सकारात्मक परिणाम दिखते हैं। आज अलगाववादियों और आतंकवादियों का जिस प्रकार पर्दाफाश हुआ है यही यदि स्वतंत्रता के बाद किया जाता तो शायद जम्मू कश्मीर की यह भयावह दशा नहीं होती। इसी संदर्भ में जम्मू कश्मीर के निर्वासित कश्मीरी पण्डितों के पुनर्वास पर भी निर्णय लिया जाना अभी अपेक्षित है।

राष्ट्र के धार्मिक जनों और संस्थाओं को चाहिए कि वे राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिए कार्यरत राजनेताओं को सहयोग करें, क्योंकि एक सुरक्षित एवं शक्तिशाली राष्ट्र में ही धार्मिक गतिविधियाँ और विद्याप्रसार संभव हैं। सामदामदण्डभेदनीति के द्वारा शत्रुओं का विनाश करके राष्ट्र को सुरक्षित करना चाहिए-

शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्त्तते।।

- दिनेश

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

मृत्यु सूक्त
(परम्... वीरान्)

डॉ. धर्मवीर

आचार्य धर्मवीर जी द्वारा वेद के सूक्तों पर दिये प्रवचनों की मांग प्रायः आती रहती है। ये व्याख्यान वेदमन्त्रों पर होने से वेद को आमजन के लिये भी बुद्धिगम्य बना देते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए इस प्रवचनमाला में इन्हीं व्याख्यानों को क्रमशः दिया जा रहा है। पाठक इस वेदज्ञान की गंगा में स्नान का आनन्द लें। -**सम्पादक**

पिछले अंक का शेष भाग....

इस मन्त्र का ऋषि यामायनः, देवता मृत्यु और छन्द त्रिष्टुप है। ये ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ सूक्त का पहला मन्त्र है। इस मन्त्र में मृत्यु के बारे में चर्चा की गई है। हमने पिछले सन्दर्भ में देखा था कि मनुष्य की जो परिस्थिति है-वो एक तो परमेश्वर की व्यवस्था में हैं और एक उसकी अपनी व्यवस्था में है। जो परमेश्वर की व्यवस्था में है उसे जन्म, जीवन और मृत्यु कहा था और उस जीवन को बनाए रखने की जो व्यवस्था है वह मनुष्य की है वह आहार है, निद्रा है, ब्रह्मचर्य, संयम है। इसमें हमें एक चीज स्वाभाविक दिख रही है, जो भी वस्तु हमारे सामने आ रही है उसकी यात्रा एक ही दिशा में है। वो उत्पन्न हो रही है, चल रही है, नष्ट हो रही है। इसमें कुछ वस्तुओं के लौटने का तो हमें पता भी चल जाता है। हमने मिट्टी से घड़े को बनाया, घड़ा रहा, घड़ा फूट गया, फिर मिट्टी में मिल गया, हम उस मिट्टी से दोबारा भी घड़ा बना सकते हैं। लेकिन जैसे हमारा जन्म हुआ, हमारा जीवन हुआ, हमारी मृत्यु हुई, इसमें हम अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकते। इसमें आधी क्रिया हमारे सामने है और आधी नहीं है। जैसे सूर्य का उत्पन्न होना, उदय होना, विद्यमान रहना, चले जाना और उसके बाद फिर उदय होना और उसका रास्ता भिन्न होना, अप्रकाशित होना, आँखों के सामने न होना, यह बताता है कि यह पूरा चक्र है और इसमें एक ही दिशा से गति हो रही है। इसमें विपरीत दिशा में कोई गति नहीं कर रहा। वैसे ही संसार की वस्तुएं उसी क्रम में चल रही हैं।

मनुष्य का जीवन भी उसी क्रम में चल रहा है। हर मनुष्य शिशु पैदा होता है, बढ़कर युवा बनता है, वृद्ध होकर मर जाता है। ऐसा कभी नहीं होता कि वह वृद्ध वापस शिशु बन गया हो, युवा बन गया हो। उसे दोबारा बनने के लिए, यह सब छोड़कर फिर नई प्रक्रिया में आना पड़ता है। इससे पता यह लगता है, निश्चय यह होता है कि यह प्रक्रिया जो हमारे सामने दिखाई दे रही है, यह आधी है और आधी दूसरी है। दूसरी जो आधी प्रक्रिया है वो भी अनेक प्रकार की हो सकती है, क्योंकि वर्तमान की प्रक्रिया भी अनेक प्रकार की है। अर्थात् एक मनुष्य के रूप में उत्पन्न हो रहा है, मनुष्य के रूप में जीवित है, मनुष्य के रूप में मर गया। एक पशु पक्षियों के रूप में उत्पन्न हो रहा है, पशु-पक्षियों के रूप में जीवित है, पशु-पक्षियों के रूप में मर गया। यहाँ तो कोई परिवर्तन आपस में नहीं हो रहा है, एक-दूसरे में संक्रमण नहीं हो रहा है, क्योंकि हम एक पहचान के साथ संसार में आते हैं, एक मनुष्य बनकर, एक स्त्री बनकर, एक पुरुष बनकर, एक पशु बनकर, एक पक्षी बनकर और हमारी वह पहचान, जब तक हम संसार में रहते हैं, बनी रहती है, उसको हम हरा नहीं सकते, मिटा नहीं सकते। लेकिन मूल प्रश्न है कि वो पहचान यदि हट गई तो आगे वो न तो पशु रहेगा, न मनुष्य रहेगा, न वृक्ष रहेगा, न पक्षी रहेगा, न कीट पतंग रहेगा। तब कोई पहचान उसके साथ नहीं होगी। फिर क्या होगा? एक ही चीज होगी, सारे के सारे जीवमात्र होंगे, बस। उनमें आप किसी को यह नहीं कह सकेंगे कि यह गधा है, यह घोड़ा है, यह गाय है, यह हाथी है, यह मनुष्य है, यह पशु है, यह पक्षी है, क्योंकि यह पहचान संसार में मिलती है और जन्म से मिलती है। जन्म की मिली हुई चीज जब तक रहती है तब तक हम वहीं रहते हैं। हमको मनुष्य का जन्म मिला है, तो हमारा जीवन, हमारी मृत्यु मनुष्य के रूप में ही होगी। एक

प्राणि को गधे के रूप में, घोड़े के रूप में, हाथी के रूप में जन्म मिला है तो जीवनभर वो गधा, घोड़ा, हाथी ही बना रहेगा। वो मर जाएगा तो उसका हाथीपना मिट जाएगा, उसका घोड़ापना मिट जाएगा, उसका मनुष्यपना मिट जाएगा और जब उसकी पहचान ही मिट गई तो फिर उसका मौलिक रूप ही रहना है।

इस शरीर में जो दो तत्त्व हैं, उनमें एक की पहचान है, दूसरे की कोई पहचान नहीं है। जिसकी पहचान है वो शरीर है। आप किसी को गधा कहें या घोड़ा कहें, हाथी कहें या भालू कहें, यह उसके शरीर के कारण आप कहते हैं। जिस दिन उसकी यह पहचान आप हटा दोगे, किसी से उसका नाम मिटा दोगे तो फिर उसे आप क्या कहोगे? फिर तो सब बिना नाम के एक से हो जायेंगे। वैसे ही मृत्यु के बाद पूरे संसार के प्राणि एकरूप हो जाते हैं, आत्मरूप हो जाते हैं। यह मेरा आधा रास्ता है। इस शरीर के साथ यात्रा जब पूरी हो जाएगी तो फिर हमें इस यात्रा में आना है। जो यात्रा हम प्रारम्भ करेंगे तो किसी के भी मन में एक स्वाभाविक प्रश्न आएगा कि क्या यात्रा हमारी इच्छा से होगी? हम मनुष्य के रूप में मरे हैं तो क्या दोबारा मनुष्य पैदा होंगे, हम स्त्री के रूप में मरे हैं, तो क्या दोबारा स्त्री के रूप में पैदा होंगे, हम गधा रूप में मरे हैं तो क्या गधे के रूप में पैदा होंगे? यह हमारे हाथ में ही नहीं है। यदि किसी कारण से हम चाहें भी तो हमारे चाहने से हमारा जन्म ही नहीं हुआ, यह तो ईश्वर की व्यवस्था से हुआ है, इसलिए यह व्यवस्था भी उसके हाथ की है। जब कोई व्यवस्था दूसरे के हाथ में है तो हमारे पास तो शेष प्रार्थना रह जाती है। वो प्रार्थना हम मौखिक रूप में भी कर सकते हैं, आचरण से भी कर सकते हैं, क्योंकि आचरण का परिणाम आगे जाता है, मौखिक का नहीं जाता। जैसे मैं रेल में जाना चाहूँ और कहूँ कि मैं हैदराबाद जाऊँगा तो क्या मैं पहुंच जाऊँगा? वैसे ही मैं परमेश्वर से १००० प्रार्थना करूँ कि यह हो जाऊँ, वह हो जाऊँ ऐसा नहीं होने वाला। लेकिन अगर मैंने वैसा आचरण किया, वैसा व्यवहार किया, वैसा कर्म किया और मेरी यात्रा जारी है, चल रही है तो निश्चित रूप से मैं वहीं पहुचूंगा, जिसका मैंने टिकिट लिया है, जिसके मैंने कर्म किए हैं।

जैसे मैंने कर्म किए हैं उसका फल मुझे अवश्य ही मिलना है, मैं चाहता हूँ कि ऐसा हो, तो मुझे वैसा करना पड़ेगा। जैसी मेरी इच्छा है, वैसा मुझे आचरण भी करना पड़ेगा, जब मैं वैसा कर लूँगा तो फिर मेरा रास्ता वो होगा, जो मैं चाहूंगा, जिसका मैंने टिकिट लिया है, जिसका मैंने मूल्य दिया है, जिस गाड़ी में मैं बैठा हूँ, मेरी यात्रा निश्चित रूप से पूरी होगी।

इस दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो कहा गया है इस मन्त्र में, **परं मृत्यो अनुपरेहि पंथाम्**-मृत्यु से एक प्रार्थना की गई है, निवेदन किया गया है, उसे कहा गया है-**परं पंथाम् अनुपरेहि।** अरे भाई, तुम दूसरा रास्ता चुनो, तुम हमारे पास मत आओ। हम तुम्हारे काम के नहीं हैं। क्योंकि हम तो जिस रास्ते जा रहे हैं, उस रास्ते तुम्हारे से हमको कुछ भी लेना-देना नहीं है। अब इसमें विचित्र बात ये है कि दुनिया में ऐसा कोई है क्या जो मरता नहीं है, कोई मरना चाहता ही नहीं है और जब मरना नहीं चाहता तो प्रयत्न से वो अपने को रोकता है, बचाता है। अभिप्राय यह होता है कि वो यहाँ से जाना नहीं चाहता। अर्थात् मृत्यु उसे ले जाना चाहती है और मैं मृत्यु के साथ जाना नहीं चाहता। तो फिर कौनसा दूसरा रास्ता हो सकता है कि मृत्यु की व्यथा परेशानी मुझे ना मिले। मृत्यु को मैं हटा तो नहीं सकता, उसको मैं अपने से मिटा भी नहीं सकता, अपने से अलग भी नहीं कर सकता। एक ही तरीका हो सकता है कि मैं स्वेच्छा से उसके साथ चला जाऊँ। मैं यदि स्वेच्छा से उसके साथ चला जाता हूँ तब फिर मुझे मृत्यु का दु:ख नहीं होगा। यही एक है मृत्यु के दु:ख को रोकने का उपाय। मुझे परेशानी यह नहीं है कि मृत्यु मुझे आ क्यों रही है, मुझे परेशानी यह है कि मैं मृत्यु चाहता नहीं हूँ और आ रही है। परिस्थिति इसलिये यह कष्टकर है। मैं अतिथि के आने से परेशान नहीं हूँ, मैं अतिथि के असमय में आने से परेशान हूँ। अतिथि के असमय आने से दु:खी हूँ। यदि वह अतिथि मेरे अनुकूल समय पर आ जाए और जब मैं चाहता हूं तब चला जाए, फिर मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी। तब वो मेरे लिए दु:ख का कारण नहीं बनेगा। इसलिए मन्त्र में कहा **''मृत्यो परम् अनुपरेहि पंथाम्''** **यस्ते स्व इतरो देवयानात्**- देवयान वाले रास्ते पर जाने

से तेरे महत्त्व का तेरे मूल्य का अर्थ नहीं रहेगा। अर्थात् मृत्यु आई और मृत्यु से हमें दुःख ही नहीं हुआ और हमने मृत्यु के इच्छानुसार अपनी इच्छा को बना लिया तो फिर मृत्यु के होने का कष्ट क्या हुआ? फिर तो जैसा मैं चाहता हूँ, वैसा ही हो गया। जब मैं चाहता हूँ तभी हो गया।

मृत्यु के प्रकार दो हैं। मृत्यु के रास्ते दो हैं। किसी भी रास्ते पर जाने वाले के लिए मृत्यु तो आती ही है। फिर यह अन्तर कैसे आया कि एक कहता है कि मृत्यु आई, दूसरा कहता है नहीं आई। इसका अन्तर एक यही मुख्य है कि आने से जब दुःखी होते हैं तो उसका प्रभाव होता है दुःखी नहीं होते तो प्रभाव नहीं होता। कौन लोग दुःखी होते हैं? जो संसारी प्राणि हैं, जो मनुष्यों में पितृयाण मार्गी हैं, जिनकी मरने की इच्छा नहीं है, उनको मृत्यु का दुःख सताता है। मृत्यु का दुःख पितृयाण मार्ग में है। लेकिन जो देवयान मार्ग के अनुयायी हैं, जो देवयान मार्ग से चलने वाले लोग हैं, यदि उनके पास मृत्यु आती है तो उनको उससे कोई विरोध ही नहीं है। तो उस व्यवस्था को अपनी व्यवस्था का अंग मानते हैं। परमेश्वर की इच्छा को अपनी इच्छा मानते हैं। जो काम मेरी इच्छानुसार ही हो जाएगा फिर मुझे दुःख होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इसलिए यहाँ कहा है कि **''देवयानात् इतरः ते पंथाः''**–तू वहाँ जा, जहाँ तेरा महत्त्व है, जहाँ तेरे महत्त्व को जानेंगे कि कोई मृत्यु होती है और तुझ से डरेंगे, तुझ से भयभीत होंगे, तुझ से भागेगे, वो कौन सा है–**इतर देवयानात्**–तो देवयान से भिन्न जो रास्ता या मार्ग है, उस मार्ग पर तुम जाओ।

यह कैसे पता लगा कि दो मार्ग हैं? एक को देवयान कहते हैं, एक को पितृयान कहते हैं और दोनों पर जाने वाले लोग मनुष्य ही हैं। अर्थात्–मनुष्य की जब मानसिक स्थिति संसार की होती है, संसार में दोबारा आने की होती है तो वह पितृयाण मार्गी है और जब वह इस संसार को छोड़कर दोबारा इसमें आना ही नहीं चाहता है, वो इस संसार से जाने के बाद लौटने की इच्छा नहीं रखता है तो वह देवयान मार्गी है। मृत्यु की दूसरी परिस्थिति यहाँ पर है कि पितृयाण मार्ग में मृत्यु न चाहते हुए भी आती है और दोबारा जन्म के चक्कर में पड़कर फिर मृत्यु से बार-बार साक्षात्कार होता है। इसके लिए ऐसे जन्म को, ऐसी व्यवस्था को कहा गया 'जायस्व-म्रियस्व।' अर्थात् मनुष्य पैदा होता रहता है, मरता रहता है। पैदा होना और मरना, दोनों की निरन्तरता अर्थात् मृत्यु के दुःख से न छूट पाना। इसलिए यहाँ पर कहा है कि मृत्यु तुम उस रास्ते जाओ जहाँ पर तुम्हारी आवश्यकता है। मन्त्र कहता है–

परं मृत्यो अनु परेहि पथां यस्ते स्व इतरो देवयानात्।

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् आचार्य वैद्यनाथ जी अनेक विषयों के मर्मज्ञ और कई भाषाओं के विद्वान् थे। पंजाब, मुम्बई, गुजरात प्रदेश तथा दिल्ली आपके कार्यक्षेत्र रहे। आपने हिन्दी, अंग्रेजी तथा संस्कृत में बहुत कुछ लिखा। Vedic Light मासिक के लम्बे समय तक सम्पादक रहे। ठाकुर अमरसिंह जी के साथ मिलकर 'प्रमाण सागर' ग्रन्थ को तैयार किया। शास्त्रार्थ भी किये।

गुजरात में एक आर्य विद्वान् पर पौराणिकों ने कोर्ट में केस कर दिया। कोर्ट में आपको आर्य विद्वान् के पक्ष में साक्षी के लिये बुलाया गया। आपकी साक्षी से आर्य विद्वान् न्यायालय से दोषमुक्त घोषित किये गये। यह सन् १९६२ के आसपास की घटना है। वह निर्णय अपने आप में ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

आप कई बड़े-बड़े वेद सम्मेलनों के अध्यक्ष मनोनीत किये गये। आपने सामवेद का अंग्रेजी में भाष्य किया। वैदिक युग और 'आदि मानव' तथा Aryasamaj Its Cult and Creed आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। आप लाहौर में दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के आचार्य पद को भी सुशोभित करते रहे।

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

ईश्वर सुकृत है, कैसे?- कुछ दिन पूर्व कहीं से एक प्रेमी विचारशील पाठक ने चलभाष पर एक बहुत सुन्दर प्रश्न पूछा। ईश्वर की रचना तथा जीव की रचना में भेद क्या है? कर्त्ता तो दोनों ही हैं। मनुष्य, पक्षी, जीव-जन्तु भी कुछ न कुछ बनाते हैं। ईश्वर नदियाँ, सागर, मेघ, पर्वत, चाँद, सूर्य, पेड़-वनस्पतियाँ, प्राणियों के शरीर बना, उगाकर कुछ न कुछ बनाता है। पक्षी नीड़ बनाते हैं। मधुमक्खी मधु बनाती है। मनुष्य घर बनाता है। उसकी कारीगरी सबके सामने है। दोनों में भेद क्या है?

पूज्य पं. रामचन्द्र जी देहलवी इसका उत्तर देते हुये मन और मस्तिष्क को छू लेने वाला तर्क दिया करते थे कि मनुष्य व प्राणी सब कुछ अपने बाहर बनाते हैं। परमात्मा सब कुछ अपने भीतर बनाता है। स्वामी रामेश्वरानन्द जी तथा देहलवी जी दोनों सबकी समझ में आने वाला एक और उत्तर दिया करते थे कि जीव बिना यन्त्रों के व इन्द्रियों की सहायता के कुछ नहीं बना सकता। सृष्टिकर्त्ता सर्वव्यापक प्रभु बिना हाथ-पैर, कान, आँख आदि के सब कुछ बनाता रहता है। कारीगर तो दोनों हैं। ईश्वर की रचना सुन्दर है और विशेष है। इस कारण वेद परमात्मा को सुकृत, सुन्दर, कारीगरी करने वाला बताता है। यह उत्तर केवल वैदिक धर्म के पास है। अन्य मत-पन्थ यह उत्तर दे ही नहीं सकते। केवल वेद ही परमात्मा को कण-कण में व्यापक मानता है। वेद परमात्मा को जगत् के भीतर-बाहर मानता है। अन्य मतों का उपास्य, किसी का कहीं है और किसी का खुदा कहीं है, परन्तु है सबका जीवों से जुदा। हमारा प्रभु हमारे पास है। हम उसके साथ हैं।

डार्विन की मान्यता- एक केन्द्रीय मन्त्री जी ने बड़ा दु:साहस करके डार्विन के मत (theory)विकासवाद को झुठलाने पर मान्य डॉ. सत्यपालसिंह जी को ऐसी बातें कहने से रोका-टोका है और ऐसा कहकर मान्य मन्त्री जी ने सत्यपाल सिंह जी का नहीं, आर्यसमाज का घोर अपमान किया है। मैं तो इन मन्त्री महोदय को बड़ा बुद्धिमान् समझता रहा। इन मन्त्री जी के देखा-देखी श्री मुलायम सिंह के सपूत ने वैज्ञानिक युग में सत्यपाल सिंह जी के कथन की खिल्ली उड़ाई है। दोष आर्यसमाजियों का भी है कि सरकार-भक्ति और सत्ता-पूजन के कारण सब मौन हैं। स्कूलों, कॉलेजों के व्यापार में मस्त एक वर्ग बोल ही नहीं सकता।

डॉ. वेदपाल जी, डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी, स्वामी विवेकानन्द जी-मेरठ, डॉ. वागीश जी मुम्बई, डॉ. ब्रह्ममुनि जी, आचार्य राजेश जी कालीकट, स्वामी ब्रह्मदेव जी कर्नाटक जैसे मर्मज्ञ विद्वानों से प्रार्थना करके तत्काल इस प्रहार का प्रतिकार हो जाना चाहिये था। एक डॉ. धर्मवीर जी के न होने से हम पिटकर चुप बैठे हैं। डॉ. दिनेश जी उत्तर देने में समर्थ हैं। वह चुप क्यों हैं? यह मैं नहीं समझ पाया। पं. भगवद्दत्त जी की दहाड़ सुनाने वालों को क्या हो गया? सभायें काग़जों पर ही हैं क्या?

१. आज संक्षेप से अपने पूर्वज विद्वानों से जो सुनता आया हूँ, जो कुछ पढ़ा है वह संक्षेप से कहता हूँ। विस्तार से अगले अंकों में लिखता जाऊँगा। घने सयाने मन्त्री जी को बता दें कि डार्विन की Theory (मत) है, यह कोई सिद्ध सिद्धान्त नहीं, Eternal Truth नहीं है। कल्पना अवश्य है।

२. डार्विन का मत है कि जो कुछ अनुपयोगी हो, वह घिस जाता है, वह मिट जाता है यथा मनुष्य की रीढ़ की हड्डी से पूँछ मिट गई और वानर मनुष्य बन गया। १४०० वर्ष इस्लाम के जन्म को हो गये। ख़तना पहले भी मध्य एशिया में था और मुसलमान विश्व में सर्वत्र यह कर्मकाण्ड करके एक इंच मांस अपने पुरुष बच्चों का उतरवा देते हैं। बार-बार यह कर्मकाण्ड करके बता रहे हैं कि यह अनुपयोगी है, फिर मुस्लिम घरों में ख़तना वाले बच्चे क्यों जन्म लेते हैं? कहाँ गया डार्विन का विकासवाद?

३. केरल जैसे प्रदेशों में लोगों का दिन-रात नदी नालों व सागर से सम्बन्ध हैं। मछलियाँ पकड़ने वाले कब से सागर पर निर्भर हैं। वे मीन सदृश नहीं तैर सकते। मैंने केरल में डूबने की बहुत घटनायें सुनीं। मीन मगरमच्छ

सदृश वे जन्म लेते ही क्यों नहीं तैरने लगते? परम वैज्ञानिक अखिलेश ही कुछ प्रकाश डाल दें।

४. राजस्थान जैसे प्रदेशों में जहाँ सरोवर, नदियाँ आदि परम्परा से भैंसों, गायों ने देखी ही नहीं (अपवाद अब होने लगा है) वहाँ भी पैदा होते ही भैंस के बच्चे को नदी में उतारो तो वह तैरकर बाहर निकल आता है। सैंकड़ों वर्षों से तैरना छूटा है फिर कहाँ से कैसे सीख लिया?

५. मनुष्य ने विकास करके भाषा कैसे सीखी? वानर से मानव बना। वातावरण से पक्षियों पशुओं की ध्वनियाँ सुन-सुनकर कालिदास, रवीन्द्रनाथ, दिनकर और महादेवी से साहित्यकार पैदा हो गये? हिमाचल, हरिद्वार जैसे क्षेत्रों में कब से बन्दर, पशु-पक्षी हैं, कुत्ते और गधे भौंकते चीख़ते रहते हैं। सहस्त्रों वर्षों में ये बन्दर, कुत्ते और गधे एक भी कवि, वैज्ञानिक व सुवक्ता पैदा क्यों न कर सके? कहाँ गया डार्विन का मत? बहुत लम्बे काल के पश्चात् विकास करके मनुष्य ने वैज्ञानिक युग तक विकास किया। अफ्रीका के हब्शियों का सभ्य संसार से सम्पर्क स्थापित हुआ तो स्वल्पकाल में वे भी पश्चिम के विकसित देशों को चुनौती देने लग गये। कहाँ गया विकासवाद?

६. डार्विन Survival of the Fittest योग्यतम ही जियेगा, बचेगा की बात करता है। संसार के सबसे बड़े लोकतन्त्र के आप मन्त्री बन गये। क्या आप ही सबसे योग्य हैं? योग्यतम की कसौटी क्या है? योग्यता बल से है? बुद्धि से है? हाथी बल में सबसे बड़ा। भेड़िया सिंह क्रूरता से, मधुमक्खी बुद्धि से, ज्ञान-विज्ञान में नासा इसरो के वैज्ञानिक और राज श्री मन्त्री जी कर रहे हैं। Fittest की डार्विन की मान्यता कहाँ गई। राबड़ी देवी जी जैसे शासक भी संसार में मिलते हैं। उनके विकास के लिये आपको देश को कोई पाठ पढ़ाना चाहिये। ये लोग कैसे राज-प्राप्ति के लिये योग्यतम बने गये?

७. Law of Natural Selection डार्विन के इस प्राकृतिक निर्वाचन की आपका मन्त्रिमण्डल व्याख्या सुना दे। महोदय, selection निर्वाचन विवेकी जीव ही कर सकता है। निर्वाचन के लिये भले-बुरे का भेद चेतन जीव ही कर सकता है। जड़ प्रकृति (अन्धा matter) भेद क्या करेगा? राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री की कुर्सी पर मक्खी भी बैठ जाती है। चोर, डाकू और भ्रष्टाचारी वोटों-नोटों के बल पर मन्त्री पद पाकर कुर्सी हथिया लेते हैं। कुर्सी बिचारी भले-बुरे का भेद कर ही नहीं पाती। डार्विन के Natural Selection की इतिहास मट्टी कूटता है। आपको पता होना चाहिये कि डार्विन का पुत्र भी विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक था, परन्तु डार्विन के मत का एक वैज्ञानिक सम्मेलन में अध्यक्ष पद से उसने प्रतिवाद किया था।

८. महोदय, डार्विन के साथ ही विकासवाद के मत पर कार्य करने वाले दूसरे वैज्ञानिक ने आगे चलकर डार्विन के मत का खण्डन कर दिया।

९. मैक्स प्लैंक सरीखे विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक ईश्वरीय ज्ञान, ईश्वर की सत्ता और जीव की सत्ता को डटकर मानते हैं। "Religious element in his nature must be recognised and cultivated if all the powers of the human soul are to act together in perfect balance and harmony."

श्रीमान् मन्त्री जी Max Planck की कोटि के वैज्ञानिक की सुनिये। 'Human Soul' की व्याख्या डार्विनवाद से करके दिखा दो।

१०. महोदय आपकी सरकार योग पर बड़े भाषण देती, घोषणायें करती रहती है। यम-नियम योग की आधारशिला हैं। इसका डार्विनवाद से प्रमाण दो। व्याख्या करो। इस युग इतने प्राचीन में यम-नियम कहाँ से आ टपके? हम तो इनकी चर्चा करेंगें ही। आप किस मुँह से इनका नाम लेते हैं? गणेश की पूजा आप करते हैं। **डार्विन के मत से गणेश की उत्पत्ति सिद्ध कर दीजिये।**

११. आपकी सरकार गीता की, श्रीकृष्ण की भी चर्चा करती है। श्रीकृष्ण ईश्वर, जीव व प्रकृति को अनादि बताते हैं, आत्मा के कर्मफल सिद्धान्त का सन्देश देते हैं। परमात्मा भोग देता है। न्यायकारी न्याय करता है। डार्विन के मत से जीव की सत्ता को सिद्ध करो। न्यायकारी ईश्वर की न्याय व्यवस्था लाओ। कृष्ण जी तथा गीता का नाम लेना भी छोड़ दें।

१२. वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र की मान्यता है, परमात्मा ने मनुष्य को व भिन्न-भिन्न योनियों को इसी रूप में जन्म दिया या बनाया। बाइबिल का आदम भी हव्वा के साथ

जन्म लेते ही अदन के बाग़ में घूम रहा था। परमात्मा ने भ्रमण करते हुये खोज निकाला। जन्म लेते ही उनको अपने नंगेपन पर लज्जा आई। लज्जा युवक-युवती अनुभव करते हैं। कुरान भी यही मानता है कि मनुष्य--मनुष्य के रूप में ही बनाया गया था। अकबर इलाहाबादी भी डॉ. सत्यपाल जी की पुष्टि करता है-

डार्विन साहिब हकीकत से निहायत दूर थे।
हम न मानेंगे कि मूरस (पूर्वज) आपके लंगूर थे।।

क्यों मन्त्री जी! सत्यपाल सिंह जी पर झटपट मुँह खोल दिया। इन सबका भी प्रतिवाद करो। सत्यासत्य का निर्णय करना है तो हम निमन्त्रण देते हैं। प्रीतिपूर्वक बात कीजिये। राजमद को छोड़कर विचार कीजिये। (शेष फिर)

श्री राहुल पण्डित जी का अद्भुत उपदेश- जब से श्री सुरजेवाला ने श्रीमान् 'राहुल' जी के जनेऊधारी ब्राह्मण होने की घोषणा की है तब से हिन्दुओं का उत्साह व धर्मभाव बढ़ा है या नहीं, ये तो पता नहीं पर राहुल जी ने अपने ब्राह्मणत्व का प्रकाश करना आरम्भ कर दिया है। आपने अपने प्रथम प्रवचन में श्रीमान् भागवत जी तथा श्री बापू गाँधी की तुलना करते हुये दोनों का भेद बताया है। हम उनके प्रवचन पर आपत्ति तो नहीं कर सकते, परन्तु उनके प्रवचन का प्रयोजन जानने की उत्सुकता अवश्य है। मन में कुछ शंकायें भी उठी हैं।

१. हमने गाँधी, नेहरू, राजेन्द्र बाबू, राजागोपालाचार्य, पटेल, जयप्रकाश, मुरारजी देसाई, लालबहादुर का युग देखा है। गाँधी जी से भागवत जी की तुलना करने की जनेऊधारी राहुल पण्डित को क्या सूझी! हमारा किसी राजनीतिक दल से कुछ भी लेना-देना नहीं। हमने राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल, राजगोपाल, श्री लालबहादुर, जयप्रकाश जी, कृपलानी जी, लोहिया जी, चौ. छोटूराम, चौधरी चरणसिंह जी को कभी स्त्रियों से घिरे नहीं देखा था। फ़िरोज गांधी जी की भी यही मर्यादा थी। उस युग के नेताओं मास्टर तारासिंह आदि की भी रीति-नीति यही थी। सरदार पटेल तो गृहमन्त्री के नाते लॉर्ड माउन्टबेटन व उसकी पत्नी के साथ फोटो में भी कभी नहीं देखे थे।

अपने देश में यम-नियमों की, महात्मा कबीर, गुरु नानक की परम्परा ही ऐसी रही है। लोकमान्य तिलक, श्री लाजपत राय, श्री गोखले, दादाभाई नौरोजी, डॉ. अम्बेडकर जी की रीति-नीति इन महापुरुषों के अनुसार रही। महात्मा ज्योतिबा फुले, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी रामानन्द तीर्थ सबका जीवन इसी व्यवहार की साक्षी देता है।

राहुल जी को यह क्या सूझी? क्या वह चाहते हैं कि भागवत के बहाने उनका मार्ग खुल जावे? या वह यह चाहते हैं कि मोदी जी प्रधानमन्त्री के रूप में स्त्रियों से मेलजोल बढ़ावें, फिर हार्दिक आदि को आगे करके मोदी जी के स्त्रियों के घेरे में फोटो लिये जावें। देश की राजनीति में गन्दगी पहले ही बहुत है। सिरसे वाले बाबे ने, आसाराम, रामपाल ने क्या कमी छोड़ी है? राहुल जी को किसी सयाने पुराने कांग्रेसी से विचार करके आगे का निर्णय लेना चाहिये। दिग्विजय के राजमार्ग पर चलने से देश में कोई अच्छा सन्देश नहीं जावेगा। बापू के पौत्र की पोथी में वर्णित सरला चौधरानी की कहानी पढ़कर केजरीवाल के एक साथी को अपने ही काम की सामग्री मिल गई। राहुलजी! हम तो एक साधारण से नागरिक हैं। आपका प्रवचन सुनकर हमें तो डर लग रहा है। कृपया सम्भल सोचकर आगे बढ़ें। सरदार पटेल, श्री लाल बहादुर शास्त्री और चौधरी चरणसिंह की जीवनी अवश्य पढ़िये। इसी में आपका व देश का विशेष हित है।

देश-विदेश के शुभचिन्तकों की चाहना- मैं किसी दिन निठल्ला नहीं बैठता। अपवाद रूप में दिन में कुछ समय कभी लिखता-पढ़ता नहीं। जिन बड़ों की छत्रछाया में आगे बढ़ा, उनकी प्रेरणा प्रतिपल मुझे कार्यरत रखती है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, मॉरिशस से गुणी विद्वान् जहाँ मेरे ग्रन्थों-ऋषि जीवन आदि पर बहुत उत्साहपूर्वक प्रतिक्रियायें देते हैं। चलभाष व पत्रों में भी अपने मनोभावों को प्रकट करके नये-नये काम भी देते रहते हैं। जीवन के इस मोड़ में जो कर सकता हूँ, किये जा रहा हूँ। आर्यसमाज के इतिहास में पायदान के इस यात्री के नये पुराने जितने ग्रन्थों का डेढ़ वर्ष में ऋषि भक्त प्रकाशन करने जा रहे हैं, वह अपने आप में एक नया कीर्तिमान होगा। लौहपुरुष, गंगा ज्ञान सागर, 'वैदिक दर्शन पं. चमूपति की लौह लेखनी से' आदि और भी बहुत साहित्य छपने वाला है। इसमें मेरी

कोई बड़ाई नहीं है। यह पं. लेखराम जी से लेकर उपाध्याय जी का तथा ऋषि के दीवाने युवकों का सब प्रताप है। मैं सबका ऋणी हूँ। किसी से कुछ माँग नहीं रहा। जिन्होंने इधर-उधर सब पत्रों में चाँदापुर का शास्त्रार्थ व माता भगवती पर एक ही लेख भेजकर मेरी लेखनी की धूम मचा दी। उनका विशेष धन्यवाद। 'स्वामी श्रद्धानन्द की जीवन-यात्रा' ग्रन्थरत्न आर्यसमाज के रंक्तरंजित इतिहास की नई-नई सामग्री देकर यह एक नया युग लाने वाला सिद्ध होगा। क्या-क्या छप रहा है और छपने वाला है? यह अभी मत पूछिये, दो मास में पता चल जावेगा।

पं. चमूपति का राज्य से निष्कासन- श्रीमती परोपकारिणी सभा के प्रेम का बंधा इस अपूर्व ऐतिहासिक वर्ष में ईश्वर मुझसे अनेक कार्य लेंगे-ऐसा दिख रहा है। मैंने भी कमर कस ली है। क्या-क्या होगा? यह देखते जाओ। पं. चमूपति जी को ऋषि जीवन के लिए घर-बार परिवार छोड़ना पड़ा। ऋषि की भक्ति के कारण निष्कासित होने वाले एकमेव पूजनीय विचारक की निष्कासन शताब्दी मनाने की किस की कामना नहीं होगी? और कौन-कौन सी शताब्दी मनानी है- यह अजमेर से घोषणा की जावेगी। हटावट का पाप करने वालों का सबको पता चलेगा।

'**कुल्लियात आर्य मुसाफिर**' का सम्पादन व प्रकाशन आर्य जनता की आशाओं से कहीं बढ़-चढ़ कर होगा। परोपकारिणी सभा तथा परोपकारिणी सभा के सब युवा प्रेमी पूरे जोश में इस कार्य में रुचि ले रहे हैं। सबने मेरा काम बढ़ा दिया है। मैं जी जान से करूँगा। कई विद्वानों ने सम्पादन में करणीय कार्यों व अत्यावश्यक टिप्पणियों के सुझाव दिये हैं। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि अपने सब शास्त्रार्थियों, बलिदानी नेताओं के आशीर्वाद से रक्तसाक्षी पं. लेखराम से लेकर पं. शान्तिप्रकाश जी तथा इतिहास केसरी पण्डित निरञ्जनदेव जी पर्यन्त सबके नाम को चार चाँद लगाकर चैन लूँगा।

कुल्लियात में ऋषि जीवन की मूल्यवान् सामग्री (जो छिपी पड़ी है) मुखरित की जावेगी। **पं. लेखराम ने नाम व काम पर जीवन खपाने वाले पूज्य पं. त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री के नाम पर उनके सुपुत्र भारत के यशस्वी डॉक्टर ऋषि कुमार आर्य जी ने सबसे पहली आहुति देकर हमारा उत्साह बढ़ाया है।** पंजाब सोया पड़ा है, मरा पड़ा है फिर भी डॉ. सरोज जी मिगलानी, पटियाला की श्रीमती कमला पाण्डव जी ने झटपट अपनी राशि भेज दी है। अमेरिका से कुछ उत्साही आर्यवीर मेरे पास आयेंगे। अजमेर भी आने की आशा है। सभी इस यज्ञ में आहुति डालेंगे। आर्यो! अमेरिका पाकिस्तान में पं. लेखराम को अन्य मत वाले याद करते हैं। फुर्ती दिखाओ! कर्त्तव्य निभाओ! इस कार्य में कमी न रहने पाये।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

ऐतिहासिक कलम....

ऋषि दयानन्द की कविता के विषय में आक्षेप और समाधान

पं. वीरेन्द्र एम.ए., रायबरेली

पाठकवृन्द! परोपकारी के फरवरी प्रथम के अंक में पृष्ठ संख्या ३३ पर आपने एक लेख पढ़ा ही होगा, जिसका शीर्षक था 'महाकवि महर्षि दयानन्द सरस्वती'। इसके लेखक पं. वीरेन्द्र शास्त्री हैं। इस लेख पर जिस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उठीं, उससे जाहिर है कि प्रबुद्ध पाठकों ने इसे रुचि से पढ़ा है। अन्य मतावलम्बियों की इस पर आपत्तियाँ भी आईं। ये आपत्तियाँ नई नहीं हैं। इसी प्रकार की आपत्तियाँ उस समय भी उठी थीं, जब यह लेख प्रथम बार (१९६३) प्रकाशित हुआ था और तत्समय ही उन आपत्तियों का समाधान भी लेखक ने किया था। उस शंका समाधान रूपी लेख को ही यहाँ पर दिया जा रहा है। ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक दोनों ही दृष्टि से यह लेख अत्यन्तोपयोगी है।

-सम्पादक

हमने 'महाकवि महर्षि दयानन्द सरस्वती' शीर्षक लेख में महर्षि के ग्रन्थों में उनके द्वारा रचे गए श्लोकों के आधार पर यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि ऋषि दयानन्द की कविता में वे सभी बातें विद्यमान हैं जो एक महाकवि की कविता में होनी चाहिए।

इस लेख में हम ऋषि दयानन्द विरचित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के आरम्भ में लिखे गए श्लोकों पर जो आक्षेप कुछ लोगों ने किए हैं उन पर विचार करते हैं।

आगरा-निवासी घनश्याम शर्मा ने सं. १८७७ वि. में 'भूमिकाभास' (भूमिकाधिक्कार अपरपर्याय) पुस्तक द्वारा महर्षि के सिद्धान्तों पर ही नहीं, उनकी भाषा तथा कविता पर भी व्यर्थ के आक्षेप लगाये। इनका उत्तर महर्षि के अनेक भक्तों ने पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखकर तथा पं. द्विजेन्द्र शास्त्री, मेरठ (उस समय बम्बई वासी) ने 'भूमिका-प्रकाश' लिखकर दिया। उपर्युक्त श्लोकों पर किये गये आक्षेप और उनके उत्तर संक्षिप्त-रूप से निम्नप्रकार हैं-

प्रथम श्लोक में ब्रह्म का 'अनादि' विशेषण देकर भी 'अज' विशेषण देना व्यर्थ और पुनरुक्त है- इसका उत्तर यह है कि 'अनादि' आदि का न होना बताता है और 'अज' पद उत्पत्ति रहित होने का बोध कराता है, अतः पूर्व से विशिष्टार्थ रखने के कारण पुनरुक्ति दोष नहीं (इसके अतिरिक्त 'अज' शब्द का अर्थ '**अज गतिक्षेपणयोः**' धातु के अनुसार 'गतिशील और सर्वव्यापक' भी है, अतः यह पुनरुक्त प्रतीत होने वाला शब्द दोष न होकर 'पुनरुक्तवदाभास' नामक अलंकार के रूप में है।) इसी प्रकार 'शाश्वत' आदि विशेषणों पर किए गये आक्षेपों के उत्तर समझने चाहिए।

'वेद नामक विद्या अपने से भिन्न किन-किन निगमों को धारण करती है'- यह आक्षेप 'निगम' शब्द का 'वेद' अर्थ लगाकर किया गया है, किन्तु विदित होना चाहिए कि निगम का अर्थ मन्त्र भी है अतः 'वेदविद्या मन्त्रों को धारण करती है' इसमें कोई दोष नहीं।

'हि', 'तु' शब्द किसलिए रखे?- यह प्रश्न भी व्यर्थ है क्योंकि ये अव्यय निश्चयार्थक हैं और प्रायः बड़े-बड़े कवियों द्वारा आवश्यकता पड़ने पर पादपूर्त्यर्थ भी प्रयुक्त किये जाते हैं।

'निगमार्थभाष्य' में कामना है या निगम भाष्य में?- यह प्रश्न भी अर्थ और भाष्य में अन्तर न समझने के कारण किया गया है वस्तुतः महर्षि ने वेदमन्त्रों का अर्थ भी किया है और भाष्य अर्थात्-आक्षेप समाधानपूर्वक व्याख्या भी, अतः 'अर्थभाष्य' प्रयोग में कोई पुनरुक्ति या व्यर्थता नहीं है।

द्वितीय श्लोक में 'कालरामाङ्कचन्द्रे' के स्थान पर 'कालरामाङ्कचन्द्रमिते' कहना चाहिए था- यह आक्षेप व्यर्थ है, क्योंकि व्याकरण से शुद्ध प्रयोग होने के कारण दोनों का एक ही अभीष्ट अर्थ है।

'प्रतिपद्यादित्यवारे' इस चरण में पाँचवाँ अक्षर दीर्घ होने के कारण छन्दोभङ्ग दोष है- यह कथन भी नितान्त अयुक्त है। श्लोक (अनुष्टुप्) छन्द का लक्षण 'श्रुतबोध' में कालिदास ने निम्न प्रकार किया है-

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अर्थात् श्लोक (अनुष्टुप्) के चारों चरणों में छठा अक्षर गुरु (दीर्घ), पाँचवाँ लघु (ह्रस्व) होना चाहिए। सातवाँ अक्षर दूसरे और चौथे चरण में ह्रस्व तथा प्रथम और तृतीय चरणों में दीर्घ होना चाहिए। प्रत्येक चरण में ८ अक्षर होते हैं।

इस प्रकार यहाँ दूसरे श्लोक के तीसरे चरण में **'प्रतिपद्यादित्यवारे'** में पाँचवाँ अक्षर 'दि' गुरु होने से आपातत: दोष प्रतीत होता है, किन्तु घनश्याम जी को यह पता नहीं कि अनुष्टुप् का यही एक लक्षण और एक प्रकार नहीं, किन्तु अन्य प्रकार भी हैं जिनमें 'पाँचवाँ सब जगह लघु' होने का नियम नहीं है- और स्वयं उपर्युक्त लक्षण बनाने वाले कालिदास ने भी अपने श्लोकों में ही इस नियम का उलंघन कर अन्य प्रकार के अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग किया है। जैसे रघुवंश महाकाव्य में-

यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्।।

यहां तीसरे चरण में पाँचवाँ अक्षर 'भू' लघु न होकर दीर्घ है। कुमारसंभव महाकाव्य में भी-

स्थानं त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथाहि ते।
चराचरणां भूतानां कुक्षिराधारतां गतः।

यहाँ तीसरे चरण का पाँचवाँ अक्षर 'णां' लघु न होकर दीर्घ ही है। यदि उक्त नियम सार्वदेशिक होता तो कविसम्राट् कालिदास इतनी बड़ी भूल कभी न करते। महर्षि के काव्यकलानिधि होने का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है? घनश्याम जी को यह लिखते हुए लज्जा न आई कि 'स्वामीजी ने पिङ्गलाचार्य की अवहेलना की है।' वस्तुत: अवहेलना घनश्यामजी ने ही की है।

''भाष्यारम्भ किया''-इसमें 'आरम्भ' शब्द क्या आद्यकृति का बोधन नहीं कराता जो 'कृतः' शब्द लिखा है- यह आक्षेप नितान्त व्यर्थ है, क्योंकि 'आरम्भ' के पश्चात् 'किया है' 'कर रहे हैं' 'करेंगे'-इनमें से किसी एक की आकांक्षा रहती है उसकी पूर्ति के लिए कृत: (किया) आवश्यक है।

तृतीय श्लोक में ''अपनी आत्मा में विदित 'आनन्द' शब्द है व उसका अर्थ?- यह कहते हुए आपका अभिप्राय यह है कि स्वामी दयानन्द अपने नाम के 'आनन्द' शब्द का बोध कराना चाहते हैं या आत्मा में वर्तमान (अर्थरूप) आनन्द का। वस्तुत: यह प्रश्न बच्चों का सा है क्योंकि महाकवि दयानन्द सरस्वती श्लेष अलंकार के द्वारा यहाँ दोनों अर्थों का बोध करा रहे हैं। इस 'आनन्द' शब्द से तो दयानन्द में आये 'आनन्द' शब्द का बोध होता है और उसके अर्थ से आत्मा में विद्यमान 'आनन्द' का। इस प्रकार यहाँ कवित्व शक्ति का चमत्कार पक्षपाती घनश्यामजी को ही दोष के रूप में दिखाई दे सकता है, सच्चे आलोचकों को नहीं।''

इसी श्लोक के 'अग्रे' शब्द पर भी आक्षेप किया है कि इसका अर्थ 'भूतकाल में' है-'आगे=सम्मुख' नहीं। किन्तु यह कथन त्रुटि-पूर्ण है। क्योंकि अनेक स्थानों पर 'अग्रे' का प्रयोग आगे-सामने के अर्थ में भी किया गया है। जैसे श्री शङ्कराचार्य ने चर्पट मञ्जरी में 'अग्रे वह्निः=पृष्ठे भानुः' प्रयोग किया है।

चतुर्थ श्लोक में 'हिताय' शब्द पर आपने आपत्ति की है कि इस शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त बिना जाने ही प्रयोग किया गया है। किन्तु यह कथन निस्सार है। यह अपनी विशिष्ट प्रयोगशैली है जो ऋषि ने अपनाई है। इसके अतिरिक्त ऋषि के अभिप्राय को सूचित करती है कि यह सब कार्य केवल हित के लिए ही किये जा रहे हैं, वस्तुत: इस शब्द का प्रयोग करके ऋषि ने वास्तविक 'साहित्य' का सृजन कर अपने श्रेष्ठ साहित्यकार होने का परिचय दिया है।

यहीं पर आपने 'सत्यमानतः' को निरर्थक बताया है, जो कि स्वयं निरर्थक है क्योंकि मान का अर्थ तोलनेवाली तराजू। **'मीयते अनेन इति मानम्।'** सत्यामानत: में रूपक अलंकार है। सत्यरूपी तराजू पर तुला हुआ-सच्चा अर्थ। कितना सुन्दर प्रयोग है। किन्तु छिद्रान्वेषी को अलंकार और सुन्दरता के दर्शन कैसे हों?

एव=ही शब्द को भी आपने व्यर्थ बताया जो नितांत अयुक्त है। 'हिताय एव' (हित के लिये ही) में निश्चायार्थक एव (ही) शब्द का प्रयोग महर्षि जैसे हितैषियों के लिए आवश्यक था। यह निरर्थक न होकर पूर्ण सार्थक है क्योंकि महर्षि का इस ग्रन्थ के रचने का उद्देश्य मनुष्यों के हित के अतिरिक्त अन्य धनोपार्जन आदि कुछ भी नहीं।

पाँचवें श्लोक में 'संस्कृतप्राकृताभ्यां' पद पर आक्षेप करते हुए ऋषि दयानन्द के पाण्डित्य पर व्यर्थ ही आक्रमण किया है। क्योंकि यहाँ निष्ठान्त 'संस्कृत' तथा 'प्राकृत' पदों का ग्रहण है। **'संस्कृता च प्राकृता च संस्कृतप्राकृते, ताभ्यां'** इस प्रकार इतरेतर योग द्वन्द्व समास करने पर यह व्याकरण से नितान्त शुद्ध है।

यहीं पर 'मन्त्रार्थवर्णनं' पर भी आक्षेप किया है कि

यह भाष्य से भिन्न है वा तत्स्वरूप। यह प्रश्न निराधार है, क्योंकि साधारण जन जानते हैं कि मन्त्रों का साधारण अर्थ भाष्य (आक्षेप समाधानपूर्वक विशद व्याख्यान) से भिन्न है। अत: यहाँ कोई पुनरुक्ति नहीं।

छठे श्लोक में आक्षेप किया है कि ''क्या ऋषि आर्य नहीं और ऋषि मुनियों में क्या अन्तर है?'' इनका यह प्रश्न नितान्त अज्ञानपूर्ण है, क्योंकि मुनि का अर्थ 'मनन-शील' और ऋषि का अर्थ 'मन्त्र-द्रष्टा' होने से दोनों में भेद है। कोई केवल मुनि, कोई केवल ऋषि, कोई दोनों भी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ आर्य अनार्य न होने की चर्चा न होकर उद्देश्य का प्रतिपादन मात्र है। आर्यावर्तस्थ, ईश्वरपुत्र, श्रेष्ठ- ये ऋषि मुनियों से भिन्न भी हो सकते हैं, अत: आर्य विशेषण देना सर्वथा सार्थक है।

सातवें श्लोक में आक्षेप किया है कि आधुनिक भाष्यों में तो स्वामी जी का भी भाष्य आ जाता है, फिर कैसे यह बनेगा? यह प्रश्न बालकों जैसा ही है, क्योंकि स्वामीजी का भाष्य तो अधुना किये जाने वाले (किये गये नहीं) भाष्यों की कोटि में होने तथा आधुनिक किये हुए भाष्यों के दोष को दूर करनेवाला होने से उक्त-कोटि में नहीं आ सकता।

इनका यह कहना कि 'स्वामी जी ने केवल अनाधुनिक की बात कहते हुए हेतु नहीं दिया' भी व्यर्थ है क्योंकि यह तो प्रतिज्ञामात्र है, हेतु तो यथास्थान दिये गये हैं।

'वेददूषका: दोषा:' में दूषक पद को व्यर्थ बताना भी ठीक नहीं, क्योंकि इस विशेषण से दोषों की वेदों को भ्रष्ट करनेवाली भयंकरता का बोध होता है।

'येन' यह साकांक्ष पद क्यों प्रयुक्त किया- यह प्रश्न भी व्यर्थ है क्योंकि काव्य में इस प्रकार के पद प्राय: प्रयुक्त किये जाते हैं। प्रथम तो येन का प्रयोग यहाँ उस रूप में नहीं है। इसका सम्बन्ध पिछले श्लोक सं. ६ के साथ है। यदि मान भी लें तो भी 'येन' के साथ 'तेन' और 'ये' के साथ 'ते' का समाक्षेप आपने आप ही हो जाया करता है-यह सभी विद्वान् जान जाते हैं।

''आधुनिक भाष्यजनित दोष नष्ट हो जावें ''-यह कथन भी स्वामीजी का ठीक नहीं, क्योंकि अब भी वैसे दोष देखने में आते हैं।'' आपका यह कथन भी युक्ति विरुद्ध है, क्योंकि वैसे दोषों का दृष्टिगोचर होना स्वयं साध्य-कोटि का अवगाहन करता है अर्थात् स्वयं असिद्ध है, अत: प्रमाण नहीं माना जा सकता। स्वामी जी का भाष्य पढ़कर देखिये तो पता चल जायेगा कि वे दोष नष्ट हो गये या नहीं। हमारी दृष्टि में तो हो गये। यदि घनश्याम जी की दृष्टि में नहीं हुए तो यह उनकी बुद्धि का दोष है, फिर यह तो स्वामीजी की अभिलाषा है जो सर्वथा उचित है। यदि स्वामीजी जीवन के न रहने से भाष्य पूरा नहीं कर पाये तो इससे उन पर या उनके किये भाष्य पर किसी प्रकार का दोष नहीं आता। ये सब बच्चों के-से व्यर्थ प्रश्न हैं।

आठवें श्लोक में 'सत्यार्थ' और फिर 'सनातन' कहना पुनरुक्त है- इसका उत्तर पहले दिया जा चुका है कि प्रत्येक विशेषण सार्थक होता है। दोनों शब्दों का अर्थ भी भिन्न है, सत्य का अर्थ है यथार्थ और सनातन का सदा से चला आने वाला।

वहीं पर यह भी आक्षेप किया गया कि 'सहाय' शब्द में 'सहायता' अर्थ रखने की शक्ति न होने से उचित प्रयोग नहीं। किन्तु विदित होना चाहिए कि 'सहायक अर्थ रखने वाला 'सहाय' शब्द भाववाचक रूप में सिद्ध होकर 'सहायता' का भी अर्थ देता है। 'सह' के साथ 'इण' धातु से 'एरच्' सूत्र से भाव अर्थ में घञर्थ अव् प्रत्यय करने से सीधा 'सहाय' शब्द भाववाचक सिद्ध हो जाता है, जिसका अर्थ हुआ 'सहप्राप्ति' साधकता तथा सहायता। इस प्रकार कुछ भी दोष नहीं।'

इसी श्लोक के 'सुसिध्यताम्' प्रयोग को भी आपने अशुद्ध बताया है- जो नितान्त भ्रममूलक है इसका समाधान पं. भीमसेन शर्मा ने अपने 'आर्यसिद्धान्त' पत्र में प्रकाशित किया था। वह यह है कि यह एकवचन की क्रिया नहीं, किन्तु लोट् लकार के प्रथम पुरुष के परस्मैपद में द्विवचन की क्रिया है। अर्थ यह है कि ईश्वर की सहायता से सत्य अर्थ और उस भाष्य के रचने का प्रयत्न-दोनों सिद्ध हों, इसके अतिरिक्त यहाँ परस्मैपद में लोट् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन मानने में भी कोई दोष नहीं, क्योंकि यह परस्मैपद और आत्मनेपद का बन्धन लौकिक संस्कृत में पाणिनि के पश्चात् का है। पहले इच्छानुसार ऋषिगण प्रत्येक धातु को अपने प्रयोगों में 'आत्मनेपद' और दूसरे के लिए प्रयोग करने में परस्मैपद के रूप में व्यवहृत किया करते थे। तदनुसार महर्षि ने इसका प्रयोग आत्मनेपद में किया है। उनका भाव है कि यह प्रयत्न मेरे लिए अच्छे प्रकार सिद्ध हो। इस प्रकार यहाँ कोई दोष नहीं।

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। **परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।**

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत-संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वप्नानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन-जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अतः दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर '**परोपकारिणी सभा**' अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

प्राणोपासना-८

तपेन्द्र

शरीर व मन की शुद्धि के लिए भोजन का सात्त्विक होना आवश्यक है अतः अभ्यासी को दृढ़ निश्चय करके भोजन की शुद्धि सुनिश्चित करनी है। भोजन तत्त्व सात्त्विक हों तथा सात्त्विकता के साथ अर्जित किये गये हों, पाप-पूर्वक नहीं। अन्न से मन बनता है। जैसा अन्न होगा, वैसा ही मन होगा। जैसा मन होगा वैसा ही चिन्तन होगा। जैसा चिन्तन होगा, वैसे ही कर्म होंगे। जैसे कर्म होंगे वैसा ही शुभ-अशुभ फल प्राप्त होगा और वैसे ही शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य के संस्कार बनेंगे। संस्कारों से पुनः उसी प्रकार के कर्म होंगे और यह क्रम चलता रहेगा, फलतः जीवन-मृत्यु का क्रम भी चलता रहेगा। योगदर्शन के ५ वें सूत्र के व्यास भाष्य में बताया है,

तथा जातीयकाः संस्कारा वृत्तिभिरेव क्रियन्ते।
संस्कारैश्च वृत्तय इति। एवं
वृत्तिसंस्कारचक्रमनिशमावर्तते।

इसी जन्म-मृत्यु के क्रम को तोड़कर मोक्ष प्राप्त करना परम पुरुषार्थ है।

चित्त की वृत्तियों को संसार से रोक देना, चित्त को एकाग्र कर लेना, निरुद्ध कर लेना योग कहा गया है। इसी से आत्मा की अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा होती है व इसी से परमेश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है। इसलिए अभ्यासी को चाहिये कि वर्तमान में अपनी वृत्तियों को सांसारिकता से रोके, निरन्तर रोकने का अभ्यास करे, ज्ञान-वैराग्य प्राप्त करे, सत्य से मन को शुद्ध करे, ज्ञान से बुद्धि को शुद्ध करे जिससे वर्तमान कर्मों से बने संस्कार पुनः सांसारिक वृत्ति न उठायें। एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य अभ्यासी को करना है, वह है पूर्व वासनाओं, संस्कारों का क्षय।

सांसारिकता का जो भी कर्म होता है उसका कारण अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। क्लेश को विपर्यय, मिथ्याज्ञान भी कहा जाता है। क्लेशों के कारण ही काम , लोभ, मोह व क्रोध वृत्तियाँ-मल-अशुद्धि उत्पन्न होती हैं। जिससे जीवात्मा पाप-पुण्य कर्मों को करता है।

क्लेशावबद्धः कर्माशयो विपाकप्ररोही भवति...।

अविद्या आदि क्लेशों से युक्त कर्माशय कर्मफल को दिलवाने वाला होता है। योग दर्शन के २/१२ सूत्र के व्यास भाष्य में, ''**तत्र पुण्यापुण्य कर्माशयः कामलोभमोहक्रोधप्रभवः**'' के अनुसार जो पाप-पुण्य रूप कर्माशय है वह काम, लोभ, मोह व क्रोध से उत्पन्न होता है और ये चित्त के मल अविद्या से उत्पन्न होते हैं। आचार्य राजवीर जी शास्त्री के शब्दों में, ''अविद्या के संस्कारों के कारण संयोग होने से पुरुष भोगासक्त हो जाता है और विद्या-यथार्थज्ञान के द्वारा संस्कारों को फलोन्मुख करने में असमर्थ करके अपवर्ग का अधिकारी बन जाता है।''

प्राणायाम का फल वर्णन करने वाले योगदर्शन के सूत्र '**ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्**' का भावार्थ करते हुए महर्षि दयानन्द जी महाराज ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखते हैं, ''(ततः) इस प्रकार प्राणायामपूर्वक उपासना करने से आत्मा के ज्ञान का आवरण=ढाँपने वाला जो अज्ञान है वह नित्यप्रति नष्ट होता जाता है और ज्ञान का प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ता जाता है।'' महर्षि व्यास लिखते हैं,

प्राणायामभ्यस्यतोऽस्य योगिनः क्षीयते
विवेकज्ञानावरणीयं कर्म।

अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करने से विवेकज्ञान का आवरण रूप जो कर्म है वह नष्ट हो जाता है। सत्यार्थप्रकाश में महर्षि लिखते हैं, ''जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है जब तक कि मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बढ़ता जाता है।'' व्यास भाष्य में आया है,

तपो न परं प्राणायामात्ततोविशुद्धिर्मलानां
दीप्तिश्च ज्ञानस्य।

प्राणायाम से अधिक कोई तप नहीं है उससे मलों की विशुद्धि तथा ज्ञान का प्रकाश होता है।

योग के बहिरंग साधनों-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार- इनका एक ही उद्देश्य है कि अभ्यासी की धारणा सिद्ध हो जावे। क्योंकि जहाँ धारणा लगेगी वहीं ध्यान लगेगा तथा वहीं समाधि लगेगी तथा तीनों के फल संयम की भी उपलब्धि होगी। समाधि अवस्था तक पहुँचने के लिए धारणा का अभ्यास होना आवश्यक है। किसी एक स्थान पर अल्पकाल के लिए मन एकाग्र होना धारणा है, धारणा की निरन्तरता बने रहना ध्यान है तथा ध्यान में धाता ध्यान ध्येय की एकरूपता हो जाना समाधि है। प्राणायाम के फल सम्बन्धि सूत्र ''धारणासु च योग्यता मनसः'' के अनुसार प्राणायाम का अभ्यास करने से अभ्यासी के मन में धारणा की योग्यता आती है। ''प्राणायाम करने से धारणा करने में मन की योग्यता= क्षमता हो जाती है। इसलिए योग के धारणादि अंगों के अनुष्ठान करने में प्राणायाम मुख्य आधार है।'' (आ. राजवीर शास्त्री) भोजवृत्ति अनुसार

धारणा वक्ष्यमाणलक्षणास्तासु प्राणायामैः क्षीणदोष मनो यत्र यत्र धार्यते तत्र तत्र स्थिरीभवति न विक्षेपं भजते।

प्राणायामों से दोषों के नष्ट होने पर धारणा में मन जहाँ-जहाँ लगाया जाता है, वहाँ-वहाँ एकाग्र होता है, विक्षेप को प्राप्त नहीं होता।

मलों=अशुद्धि का नाश होकर ज्ञान का प्रकाश बढ़ना तथा धारणा में मन की योग्यता होना-प्राणायाम का फल बताया गया है। अतः अभ्यासी को निरन्तरता से, सत्कारपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास विधिपूर्वक करना चाहिये तथ क्रमशः करना चाहिये। इससे अल्पकाल में ही अभ्यासी को इच्छित लाभ स्वयं ही दिखाई देगा। लाभ दिखने से योग में श्रद्धा बढ़ेगी जिससे आगे का मार्ग भी सरल होगा।

आसन की सिद्धि के लिए जब अनन्त समापत्ति का अभ्यास किया जाता है तो प्रारम्भ में उससे पूर्व शरीर की स्थिरता पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता, जिससे अनन्त समापत्ति में सुगमता नहीं हो पाती। अतः समुचित आसन में बैठकर प्रयत्नशैथिल्य का अभ्यास किया जाना पहली जरूरत है। इसमें एक अभ्यास यह भी किया जा सकता है कि आसन में बैठकर पैर से लेकर सिरपर्यन्त ऊपर की ओर मन को चलावें। फिर दूसरे पैर से सिर तक मन को लावें, फिर पूरे शरीर में नीचे से ऊपर की ओर मन को विचरण करावें। इससे शरीर के अंग शिथिल हो जावेंगे तथा शिथिलता होने से स्थिर भी होंगे। यह कुछ-कुछ वैसी स्थिति होगी जैसी शवासन में हो जाती है। इस समय शिथिलता व स्थिरता होने से नींद सी आ सकती है, यह नहीं होने देना, यह तमोगुण का लक्षण है। सात्त्विक स्थिति-ज्ञान की स्थिति बनाये रखनी है तथा इस स्थिति के तुरन्त बाद अनन्त समापत्ति में मन को सामने की दिशा में अनन्त तक फैला देना है-प्रेषित करना है। तदुपरान्त सन्ध्या के मनसा परिक्रमा अनुसार दिशाओं में मन को एकाग्र करना है। एक दिशा का अभ्यास होने पर दूसरी दिशा का अभ्यास प्रारम्भ करना उचित है। ओ३म् का जप प्राणायाम के समय किया जाना है, आसन में मन को अनन्त तक प्रेषित करने का अभ्यास ही करना है।

प्राणायाम से मन की धारणा में योग्यता होती है, अतः प्राणायाम करते समय हृदयस्थल पर मन को टिकाकर रखना है तथा ओ३म् का जप करना है क्योंकि हृदय में ही आत्म-दर्शन, परमात्म-दर्शन होता है। प्राणायाम करते समय यदि मन सांसारिक विषयों का चिन्तन करता रहेगा तो सांसारिक विषयों में एकाग्रता होगी-धारणा होगी और मन को सांसारिक विषयों में ले जाना तथा सांसारिक विषयों पर धारणा करना तो अभ्यासी को अभीष्ट है नहीं। अभ्यासी को इस बिन्दु पर विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है।

प्राणायाम का अभ्यास करते-करते प्राणों की ऊर्ध्व गति होने पर अभ्यासी की ऐसी स्थिति आ जावेगी कि मन को थोड़ा एकाग्र करते ही प्राणों की ऊर्ध्वगति का आभास-अनुभव होने लगेगा। इस समय प्राण प्राणनाड़ियों के अवरोधों को दूर कर रहे होते हैं अतः अभ्यासियों को मात्रा-भेद से शरीर में अधिक गर्मी या सिर में पीड़ा आदि हो सकते हैं। अभ्यासी बैचेनी अनुभव कर सकता है। अभ्यासी कई बार घबराकर डॉक्टरी जाँच आदि कराता है, परन्तु उसमें सब पैरामीटर नॉर्मल आते हैं। अभ्यासी औषध भी ले लेता है। ऐसे में अभ्यासी को धैर्य रखना चाहिये क्योंकि यह बहुत उच्च स्थिति है तथा विरले अभ्यासियों को ही प्राप्त होती है। स्वामी सत्यबोध जी महाराज अनुसार यह उपद्रव

कुछ काल रहकर अपने आप शान्त हो जाते हैं। इसमें औषधि लिया जाना न तो लाभदायक होता, न उसकी आवश्यकता होती। हाँ, अभ्यासी को अपने लक्षणों को सत्यता से परखना चाहिये। यदि प्राणोत्थान के लक्षण न हों, अन्य रोग के लक्षण हों और उपचार न लिया गया तो उचित नहीं। यदि प्राणोत्थान के लक्षण हैं और उपचार लिया जावे तो भी उचित नहीं।

एक सावधानी अभ्यासी को और रखनी चाहिये- बाह्यवृत्ति प्राणायाम करते समय गर्दन को आगे की ओर मोड़कर बन्ध नहीं लगाना चाहिये। गर्दन से ऊपर सिर तक प्राणोत्थान की प्रक्रिया अलग है जो धड़ में उत्थान के बाद करणीय है तथा उससे सिर में पीड़ा आदि की अवधि कम हो जाती है। यदि ऐसी स्थिति आ गयी हो, सिर में पीड़ा हो तो प्राणों को सिर के ऊपर अनन्त तक प्रेषित करने का अभ्यास करना चाहिये अर्थात् प्राणों को सिर के उच्च भाग से बाहर निकालने का प्रयास करना चाहिये। इससे यह उपद्रव शीघ्र ही समाप्त हो जावेंगे। कुछ अभ्यासी घबराहट या किसी की सलाह से पैर के अंगूठे आदि शरीर के नीचे के स्थान में -नीचे की ओर एकाग्रता करने लगते हैं, यह बिल्कुल उचित नहीं है। क्योंकि प्राणोत्थान विरले अभ्यासियों को होता है, यह प्राणायाम की उच्च स्थिति है, उसे वापस निम्नप्रवाही बना देना अभ्यासी के लिए हानिप्रद है। यह तो वैसा ही है जैसा नदी के एक हजार मीटर के पाट को तैर लिया, आगे सौ मीटर बचा था फिर घबराकर वापस तैरना शुरु कर दिया। इस घबराहट में तैराक पुनः एक हजार मीटर तैरता है और वापस उसी किनारे आकर खड़ा हो जाता है जहाँ तैरने से पहले खड़ा था। बल्कि उससे भी १००-२०० मीटर निम्न प्रवाह की ओर स्थिति कर लेता है।

अभ्यासीगण! आप भाग्यवाले हैं, आपने साधना का मार्ग चुना है। आपने सत्यकाम की तरह सांसारिक सुखों के त्याग का मार्ग चुना है। आपने प्रेय मार्ग की वास्तविकता को समझकर श्रेय मार्ग का ग्रहण किया है। शास्त्रों अनुसार यही सही रास्ता है, यही रास्ता अपवर्ग तक ले जाता है, इसी से दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है, इसी से आनन्द की प्राप्ति होती है क्योंकि **नात्रदर्शनं मोक्षकारणम्** (२-२०) सांसारिक विषयों का दर्शन मोक्ष का कारण नहीं। **ननु बुद्धिनिवृत्तिमेव मोक्षः।** बुद्धि की सांसारिक कार्यों से निवृत्ति मोक्ष है। सांसारिक विषय लुभावने अवश्य हैं, परन्तु प्रतिपक्षभावना आदि से इन्हें दूर हटाया जा सकता है, तनु किया जा सकता है। **प्रतिपक्षभावनापहताः क्लेशास्तनवो भवन्ति** (२.४)। वैराग्य से विषयस्रोत को रोकें तथा विवेक दर्शन के अभ्यास से विवेक-स्रोत को खोलें। अभ्यास और वैराग्य दोनों के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करें।

तत्र वैराग्येण विषयस्रोतः खिलीक्रियते।
विवेकदर्शनाभ्यासेन विवेकस्रोत उद्घाट्यते।
इत्युभयाधीनश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

बृहदारण्यक उपनिषद् कहती है,

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुत इति।

जब हृदय में बैठी हुई कामनाएं छूट जाती हैं, तब यह मर्त्य-मनुष्य अमृत हो जाता है। यहीं पर ब्रह्म का आनन्द ले लेता है।

अभ्यासीगण! कामनाओं को छोड़ने से ही साधना में उन्नति होगी, सभी शास्त्र ऐसा ही उपदेश दे रहे हैं। विवेकचूड़ामणि में आया है-

अत्यन्त वैराग्यवतः समाधिः।

अत्यन्त वैराग्यवान् मनुष्य को समाधि लाभ होता है। महाभारतकार कहते हैं-

असंयतात्मना योगो, दुष्प्राप इति मे मतिः।

जिसका मन वश में नहीं है उसके लिए योग असंभव है।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः

अतः अपने मन को एकाग्र करके, चित्त व इन्द्रियों को वश में करके आत्मशुद्धि के लिए अविलम्ब योगाभ्यास के लिए आसन पर डट जाओ। विषय-वासनायें विषयों को भोगने से कम नहीं होतीं बल्कि और अधिक बढ़ती हैं। ये धन-सम्पत्तियाँ भी शाश्वत नहीं हैं, नित्य नहीं हैं, सदा पास रहने वाली नहीं हैं, साथ जाने वाली नहीं हैं।

विभवो नैव शाश्वतः।

आचार्य धर्मवीर जी को वैराग्यशतक का यह श्लोक

बहुत प्रिय था। वे साधना के अतिरिक्त सभी कार्यों को वणिक् वृत्ति कहकर यह श्लोक सुनाया करते थे-

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः,
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः।
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं,
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः।।

आचार्य ज्ञानेश्वर जी आर्य इस श्लोक का भावार्थ करते हुए लिखते हैं, ''वेदों, स्मृतियों, पुराणों तथा अन्य बड़े-बड़े शास्त्रों को केवल पढ़ते-पढ़ाते रहने से तथा विभिन्न कर्मकाण्डों को करते रहने से स्वर्ग में एक अच्छा घर व भोग्य साधन मिल जाने के अतिरिक्त और क्या विशेष लाभ है? मनुष्य का मुख्य कार्य तो ईश्वर के आनन्द को प्राप्त करने के लिए हृदयरूपी गुहा में प्रवेश करके समाधि लगाना ही है, जो संसार के समस्त दुःखों के कारण (=अविद्या) को जला देने के लिए अग्नि का काम करता है और सब कार्य तो बनियों के व्यापार के समान हैं।''

अभ्यासीगण! श्रद्धा से साधना में जुट जाओ, क्योंकि समय कम है तथा मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती।

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य वा न कृतम्।।

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं, इस से गृहस्थजन विशेषकर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२४

विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिससे बुद्धि, बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४२

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

१. वेदपथ के पथिक (आचार्य धर्मवीर स्मृति ग्रन्थ)

पृष्ठ संख्या-२६४

मूल्य-रु. २००/-(आधे मूल्य पर उपलब्ध)

परोपकारिणी सभा के यशस्वी प्रधान डॉ. धर्मवीर जी का जीवन सत्य के लिये संघर्षपूर्ण रहा है। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने ईश्वर, वेद और धर्म को अपने जीवन से तनिक भी अलग नहीं होने दिया और यही विशेषता रही, जिसके कारण वे एक आदर्श आचार्य, आदर्श नेता, आदर्श लेखक, आदर्श सम्पादक एवं आदर्श उपदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके जीवन की कही-अनकही घटनाएँ हमें भी प्रेरणा दें, इस दृष्टि से ये ग्रन्थ अवश्य पठनीय है। जिन्होंने डॉ. धर्मवीर जी को निकट से देखा है, जो उनके जीवन की घटनाओं के साक्षी रहे हैं, उनके संस्मरण इस कर्मयोगी के जीवन की बारीकियों को उजागर करते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में चित्रों के माध्यम से भी उनके जीवन की कुछ झलकियों को दर्शाया गया है।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती के कुछ हस्तलिखित पत्र-

पृष्ठ संख्या-३३६ **मूल्य**-रु. २००/-

महर्षि दयानन्द, उनके उद्देश्यों, कार्यों, योजनाओं एवं व्यक्तित्व को समझने में उनके द्वारा लिखे पत्र उतने ही उपयोगी हैं, जितना कि उनका जीवन-चरित्र। ये पत्र महर्षि के हस्तलिखित हैं। पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें मूल-पत्रों की प्रतिलिपि दी गई है और साथ ही वह पत्र टाइप करके भी दिया गया है। यह पुस्तक विद्वानों के दीर्घकालीन पुरुषार्थ का फल है। जनसामान्य इससे लाभ ले-यही आशा है।

३. अंग्रेज जीत रहा है-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-२२२ **मूल्य**-रु. १५०/-

इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के 'भाषा और शिक्षा' विषय पर लिखे गये ४२ सम्पादकीयों का संकलन किया गया है। 'परोपकारी' पत्रिका में लिखे गये इन सम्पादकीयों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की माँग समय-समय पर उठती रही है। अत: पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। डॉ. धर्मवीर जी का चिन्तन बेजोड़ था। वे जिस विषय पर जो भी लिखते वह अद्वितीय हो जाता था। उनके अन्य सम्पादकीयों का प्रकाशन भी प्रक्रिया में है। पुस्तक का आवरण व साज-सज्जा अत्याकर्षक है।

४. स्तुता मया वरदा वेदमाता-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-१३५ **मूल्य**-रु. १००/-

वेद ईश्वर प्रदत्त आचार संहिता है। वेद की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है और वही धर्म है, इसलिये मानव मात्र की समस्त समस्याओं का समाधान वेद में होना ही चाहिये। वेद के कुछ ऐसे ही सूक्तों की सरल सुबोध व्याख्या ही इस पुस्तक में की गई है। पुस्तक की भाषा इतनी सरल है कि नये-से नये पाठक को भी सहज ही आकर्षित कर लेती है। व्याख्याता लेखक आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के गहन आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक चिन्तन व अनुभवों के परिणामरूप यह पुस्तक है।

५. इतिहास बोल पड़ा–

लेखक – प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

पृष्ठ संख्या–१५९ **मूल्य**–रु. १००/–

इस पुस्तक में इतिहास की परतों से कुछ दुर्लभ तथ्य निकालकर दिये गये हैं, जो कि आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती के गौरव का बखान करते हैं। पुस्तक के लेखक प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु हैं। ऋषि के समय में देश–विदेश से छपने वाले पत्र–पत्रिकाओं के उद्धरण इस पुस्तक में दिये गये हैं।

६. बेताल फिर डाल पर

लेखक – प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या–१०४ **मूल्य**–रु. ६०/–

डॉ. धर्मवीर जी की हॉलैण्ड एवं अमेरिका यात्रा का विवरण एवं अनुभव इस पुस्तक में है। विदेश में आर्यसमाज की स्थिति, कार्यशैली, वहाँ की परिस्थितियाँ एवं विशेषताओं को यह पुस्तक उजागर करती है। यायावर प्रवृत्ति के विद्वान् आचार्य धर्मवीर जी की यह पुस्तक एक प्रचारक के जीवन पर भी प्रकाश डालती है।

७. लोकोत्तर धर्मवीर–

लेखक – तपेन्द्र वेदालंकार,

पृष्ठ संख्या–४४ **मूल्य**–रु. २०/–

तपेन्द्र वेदालंकार (सेवानिवृत्त आई.ए.एस.) ने इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनसे धर्मवीर जी के महान् लक्ष्यों व तदनुरूप कार्यशैली का पता चलता है। इस लघु पुस्तक से प्रेरणा लेकर प्रत्येक आर्य ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के उद्देश्यों को पूर्ण करने में उत्साहित हो–यही आशा है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम – **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम – **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या – **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

अतिथि–यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि–यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

वैदिक 'संध्या' द्वारा
मानव-जीवन के प्रथम कर्त्तव्य-कर्म की पूर्ति

प्रो. (डॉ.) सुन्दरलाल कथूरिया, डी.लिट्.

मानव योनि कर्म-योनि है, जबकि अन्य सभी योनियाँ भोग योनियाँ हैं। वेद के अनुसार मनुष्य शुभ कर्म करते हुए सौ वर्ष तक या उससे भी अधिक वर्षों तक जीने की इच्छा करे। मनुष्य को चाहिए कि वह निष्काम कर्म करे- कामना और स्पृहारहित होकर ऐसे शुभ कर्म करे कि जो उसे मोक्ष-प्राप्ति की ओर ले जाएँ। मनुष्य को यह कर्मयोनि इसीलिए मिली है कि वह अपने कर्त्तव्य-कर्मों की सम्यक् प्रकार से पूर्ति करे तथा अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति करे। 'संध्या' मनुष्य का अत्यावश्यक प्राथमिक कर्त्तव्य-कर्म है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'वैदिक संध्या' में मनुष्य के तीन कर्त्तव्यों का विधान किया है, जिनमें से पहला कर्त्तव्य यह है कि मनुष्य को अपने साथ क्या करना चाहिए। यदि मनुष्य अपने प्रति अपने कर्त्तव्य को जान ले और उसकी पूर्ति का प्रयत्न करे तो लक्ष्य-प्राप्ति की दिशा में उसका एक कदम बढ़ जाए। तीन प्रकार के तापों से मुक्त होने के लिए आवश्यक यह है कि व्यक्ति शक्ति, सम्पत्ति और ज्ञान का संचय करे ताकि इन अभावों के चलते वह आधिदैविक,आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक तापों से दुःखी न हो। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह सात प्रकार की शक्ति-शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, आत्मिक, सामाजिक और राजनीतिक, के संचय का प्रयत्न करे। इनमें से किसी एक के अभाव से भी उसे कुछ-न-कुछ दुःख तो होगा ही। इसी प्रकार सात प्रकार की सम्पत्तियाँ/विभूतियाँ व्यक्ति के सुख का कारण बनती हैं। वे हैं-१. अन्न, जल, वस्त्रादि २. पत्नी/पति ३. पुत्र (सन्तान) ४. गृह ५. विद्या ६. औषधि ७. लक्ष्मी (धनादि)। ज्ञान के अभाव में भी व्यक्ति दुःखी रहता है। ज्ञान-विषयक दस प्रकार अथवा ज्ञातव्य प्रश्न/विषय हैं-''१. जिसे जानता है उसे मानता नहीं। २. जिसे मानता है, उसे जानता नहीं। ३. नित्य क्या है, अनित्य क्या है? ४. मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और किसलिए आया हूँ? ५. यह संसार क्या है और किसलिए है? ६. परमात्मा से मेरा क्या सम्बन्ध है? ७. मेरे आवागमन का कारण क्या है? ८. मुझे किस वस्तु ने बाँध रखा है? ९. मेरे पतन का कारण क्या है? १०. मेरा छुटकारा कैसे हो सकता है?'' (सन्ध्या रहस्य, पृ. ६) ये अभाव जितने-जितने कम होंगे, मनुष्य उतना-उतना सुखी होगा। उपरिलिखित दुःखों-अभावों से मुक्ति पाने के लिए संध्या करना अत्यावश्यक है।

मनुष्य का अपने प्रति क्या कर्त्तव्य है, इसे जानकर सुखी होना मनुष्य का धर्म है। संस्कृत के एक कवि के अनुसार संसार में सुख के छः साधन हैं-

अर्थागमो नित्यमरोगिता च,
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वशश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,
षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।

प्रतिदिन धन-सम्पत्ति का आगम, स्वस्थ शरीर, सुदर्शना एवं प्रिय बोलने वाली (मधुरभाषिणी) पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र तथा अर्थकरी विद्या। सभी अभावों को दूर करने तथा सुख के साधनों को प्राप्त करने के लिए इन्द्रियों का पवित्र एवं बलवान होना तथा मन, बुद्धि एवं आत्मा का पवित्र होना आवश्यक है। इस दृष्टि से अपने प्रति मनुष्य के पाँच कर्त्तव्य हैं-१. इन्द्रियों को बलशाली २. यशस्वी ३. पवित्र बनाना ४. स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं आन्तरिक अवयवों को शुद्ध, पवित्र और बलवान बनाना ५. ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न करना। मनुष्य के उपरिलिखित कर्त्तव्य-कर्मों की पूर्ति संध्या के इन्द्रिय-स्पर्श, मार्जन, प्राणायाम एवं अघमर्षण मन्त्रों के द्वारा होती है।

वैदिक संध्या के इन्द्रिय-स्पर्श मन्त्रों में वाणी, प्राण, आँख, कान, नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर, भुजाओं एवं हाथ के करतल भाग को जहाँ बलवान और यशस्वी बनाने की ईश्वर से प्रार्थना की गयी है, वहाँ मार्जन मन्त्रों में शिर, दोनों नेत्रों, कण्ठ, हृदय, नाभि, दोनों पैरों, पुनः शिर एवं सारे शरीर को पवित्र एवं यशस्वी बनाना मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है। उक्त इन्द्रियाँ बलवान, पवित्र एवं यशस्वी कैसे

बनेंगी, इस पर गहन विचार कर मनुष्य तदनुकूल आचरण करे। यहाँ विस्तार भय से कुछ अधिक न लिखकर संकेत मात्र किया जा रहा है। वाणी संयत, मधुर, अपशब्दरहित एवं सत्यनिष्ठ होनी चाहिए। प्राणों में बल प्राणायाम से आयेगा। प्राणों (श्वासों) को विषय भोगों में न गँवा कर हम ईश्वर की भक्ति में लगायें, योग-साधन में लगायें- इसी में इनकी सार्थकता है। प्राणायाम के मन्त्र भी इसी ओर संकेत करते हैं। प्राणायाम के द्वारा आयु तो बढ़ेगी ही, प्राण बलवान, पवित्र और यशस्वी भी होंगे। ईशभक्ति, देशभक्ति एवं शुभकार्यों में प्राणों को लगाने वाले तथा जाति (मानवजाति), धर्म, राष्ट्र आदि पर प्राणों का बलिदान करने वाले यशस्वी और अमर हो जाते हैं। नेत्रों में पवित्रता होनी चाहिए। उनके द्वारा हम अभद्र का दर्शन न करें और न अपने विचारों को कुत्सित ही होने दें। नेत्रों के द्वारा हम सदैव शुभ देखें-'मातृवत् परदारेषु', दूसरों की स्त्रियों को माँ-बहन के समान समझें तथा दूसरों के धन को मिट्टी के ढेले के समान समझें। दूसरों की धन-सम्पदा की चमक से हमारी आँखें चौंधिया न जाएँ- **मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।** हमारी आँखों में क्रोध की लाली न हो, वे अहंकार से गर्वोन्नत न हों, अपितु विनम्रता से झुकी रहें- **विद्या ददाति विनयम्।** हमारे कान कुत्सित शब्दों का श्रवण न करें, वे सदैव वेद-शास्त्रों के श्रवण में लगे रहें। कहने का भाव यह कि हमारी वाणी बुरा न बोले, हमारी आँखें बुरा न देखें और हमारे कान, बुरा न सुनें। आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने अपने तीन बन्दरों के द्वारा जो सन्देश देना चाहा है, उसे वैदिक ऋषियों ने मानवता के कल्याण के लिए बहुत पहले ही दे दिया था। आवश्यकता है तो उस सन्देश को आत्मसात् करने की, उसे आचरण में ढालने की-और इन तीन इन्द्रियों के संयम से व्यक्ति बहुत कुछ पा सकता है: मानसिक शान्ति, यश, विद्या, धन-सम्पत्ति, अनेक गुण आदि। इन गुणों में अहिंसा, सत्यादि यमों एवं शौच (पवित्रता), संतोषादि नियमों का समावेश भी है।

नाभि, हृदय, कण्ठ के साथ दोनों भुजाओं, दोनों पैरों, शिर तथा समग्र शरीर को भी बलशाली और पवित्र बनाने की प्रार्थना प्रभु से की गयी है। भुजाओं को यशस्वी बनाने की प्रार्थना भी की गयी है। पर बिना पुरुषार्थ के प्रार्थना फलीभूत नहीं होती और पुरुषार्थ या प्रयत्न तो साधक को स्वयं ही करना है। अन्य अवयवों के साथ नाभि का बल बढ़ाने की बात कई साधकों को अटपटी लग सकती है, पर ऋषियों का कोई वाक्य निरर्थक नहीं है। नाभि का महत्त्व गर्भस्थ शिशु के लिए ही नहीं, कालान्तर में भी है। स्व. पं. चमूपति जी के शब्दों में, ''हमें वैद्य बताते हैं कि इस आहार का पाचन नाभिस्थ प्राण (उदान) से प्रदीप्त जठराग्नि द्वारा होता है। योगियों की योगसिद्धि मूल-स्थान से नाभि तक जल चढ़ाकर नाभि-चक्र के साफ करने से होती है। गवैयों का प्रथम अर्थात् सबसे नीचा स्वर नाभि से उठता है। यह है महत्त्व नाभि का।'' (संध्या रहस्य, पृ. १८) नाभि को प्राणायाम के द्वारा बलवान बनाया जा सकता है। हृदय का महत्त्व तो सब जानते ही हैं। हृदय रक्त का केन्द्र-बिन्दु है। यदि रक्त का संचार और परिशोधन ठीक हो, हृदय की धड़कन ठीक हो तो सब ठीक, अन्यथा सब अस्त-व्यस्त। प्राणों के लाले पड़ जाते हैं। हृदय की पुष्टि के लिए सात्त्विक आहार-विहार, सात्त्विक विचार, प्रातः सायं भ्रमण, व्यायाम, प्राणायाम, ब्रह्मचर्यादि लाभकारी हैं। इसी प्रकार से कण्ठ, भुजाएँ, टाँगें, शिर आदि भी व्यायाम, आसनों, दण्ड-बैठकादि से बलवान् बनाये जा सकते हैं। कण्ठ शरीर का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। यह मुख, नासिका आदि से भी सम्बद्ध है। यदि कोई इसे जोर से दबा दे तो मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है। कण्ठ को जल-चिकित्सा और प्राणायाम से पुष्ट बनाया जा सकता है। हमारी भुजाएँ बलवान और यशस्वी हों। भुजाओं का बलिष्ठ होना ही पर्याप्त नहीं, उनका यश निर्बलों, बच्चों, अबलाओं, ब्राह्मणों, विद्वानों, सज्जनों आदि की रक्षा में है। हमारे पैर शक्तिशाली हों और वे सदैव सत्संगादि शुभकर्मों की दिशा में बढ़ें, गलत कामों की ओर हमारे कदम कभी न बढ़ें। 'करतल करपृष्ठे' के द्वारा दान की महिमा की ओर संकेत किया गया है- **दानेन पाणिर्नतु कंकणेन** अर्थात् हाथ की शोभा दान देने में है, स्वर्णादि के कंगन पहनने में नहीं। एक हाथ दान दे तो दूसरे को पता भी न चले। दान देकर उसका ढिंढोरा पीटने से दान की महिमा कम हो जाती है। गुप्त दान का जो महत्त्व है, वह दिखावे के लिए दिये गये दान का नहीं है। व्यक्ति बलशाली हो, यशस्वी हो

और उसकी सभी इन्द्रियाँ पवित्र हों, इसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करने के साथ-साथ व्यक्ति स्वयं भी प्रयत्न करे। मनुष्य बल का दुरुपयोग न करे, किसी पर अन्याय और अत्याचार न करे, बल का प्रयोग न्यायपूर्वक सत्य और धर्म की रक्षा के लिए करे, तभी वह यशस्वी बनेगा और जो यशस्वी होता है, जिसकी कीर्ति होती है, वही जीवित रहता है अर्थात् मृत्यु के बाद भी अपने यश: शरीर से अमर हो जाता है।

समझने की बात यह है कि इन्द्रिय स्पर्श और मार्जन मन्त्रों में जिन प्रमुख अंगों का उल्लेख है, उनके आसपास के अन्य अवयवों का समावेश भी उनमें हो गया है। उदाहरण के लिए 'नाभि' के उल्लेख से उदर, तिल्ली, कलेजा, गुर्दा, छोटी-बड़ी आँत आदि का, 'पाद' (पैर) के उल्लेख से कटि प्रदेश से नीचे के समग्र भाग का, जिसमें गुप्तांग और टाँगें आदि भी हैं, 'वाक्' में समग्र उच्चारणावयवों का और 'शिर' में शिरोभाग के समस्त अंगों, जिसमें मस्तिष्क और ब्रह्मरन्ध्र भी हैं, का समावेश समझना चाहिए। भाव यह है कि इन प्रमुख अंगों के उल्लेख से मनुष्य के सारे शरीर का परिकल्पन हो गया है। सारे शरीर की शुद्धि जहाँ जल से होगी, वहाँ मन-मस्तिष्क की शुद्धि विद्या, सत्य, अच्छे विचारों एवं सद्गुणों को धारण करने से होगी। इस सन्दर्भ में मनु महाराज का निम्नांकित श्लोक सदैव ध्यान में रखना चाहिए-

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति, मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।।

-मनुस्मृति

'इन्द्रिय स्पर्श' मन्त्रों में जहाँ 'शिर' का एक बार उल्लेख हुआ है, वहाँ मार्जन मन्त्रों में दो बार तो स्पष्टत: शिर का उल्लेख है ही, परोक्षत: 'खं ब्रह्म' में भी माना जा सकता है। शिर, मनुष्य के शरीर का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भाग है, इसीलिए संध्या के इन्द्रिय स्पर्श और मार्जन मन्त्रों में इतनी बार शिर का उल्लेख हुआ है। शिरोभाग में स्थित मस्तिष्क या बुद्धि ही मनुष्य को पशुओं से विशिष्ट बनाती है। यदि मस्तिष्क में विकृति आ जाए और मनुष्य पागल हो जाए तो उसकी सारी विभूतियाँ उसके लिए निरर्थक हो जाती हैं और उसका अस्तित्व शून्य हो जाता है। मनुष्य का सारा वास्तविक बल बुद्धि की प्रखरता पर निर्भर करता है-'**बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।**' बुद्धि को, शिर को बलशाली और पवित्र बनाने के लिए गायत्री मन्त्र का अधिकाधिक जाप करना चाहिए। इस मन्त्र के जाप से नि:सन्देह मनुष्य मेधावी बन सकता है और '**यां मेधां देवगणाः**' की प्रार्थना को चरितार्थ कर सकता है। 'इन्द्रिय स्पर्श' और 'मार्जन' के इन मन्त्रों से साधक बच्चों जैसी सरलता, भोलेपन एवं निष्कपटता का संदेश तो ग्रहण कर ही सकता है, साथ ही यह भी कि स्नान करते समय इन अंगों को अच्छी प्रकार साफ करना चाहिए और प्रत्येक अंग को जल से धोते समय इन मन्त्रों के अर्थ पर भी विचार करना चाहिए। इन्द्रिय स्पर्श और मार्जन मन्त्रों के द्वारा प्रभु से यह प्रार्थना भी की गयी है कि हमारे शरीर के सारे अंग हर दृष्टि से पूर्ण और अविकल हों अर्थात् उनमें किसी प्रकार की कोई कमी न हो।

मनुष्य के अपने प्रति जो पाँच कर्त्तव्य हैं उनमें से दो अर्थात् इन्द्रियों को बलशाली और यशस्वी बनाने की पूर्ति जहाँ इन्द्रिय स्पर्श मन्त्रों से हो सकती है, वहाँ तीसरे कर्त्तव्य अर्थात् इन्द्रियों को पवित्र बनाने की पूर्ति मार्जन मन्त्रों से हो सकती है। मार्जन का अर्थ ही है मांजना। हमें अपनी इन्द्रियों को अभ्यास और चिन्तन के द्वारा मांजना है, चमकाना है, शुद्ध और पवित्र बनाना है- बाहर से और भीतर से भी। पापों से बचते हुए शुभ कर्मों में प्रवृत्त होना है- इन इन्द्रियों को शुभ कर्मों में लगाना है। जल से बाहर शुद्धि और शुभ कर्मों में प्रवृत्ति से आन्तरिक शुद्धि-यही इन्द्रिय स्पर्श और मार्जन मन्त्रों का रहस्य है। इस रहस्य को समझकर इस पर आचरण तो साधक को स्वयं ही करना है, क्योंकि आचरणविहीन व्यक्ति को तो वेद भी शुद्ध नहीं कर सकते-
'**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।**'

अपने प्रति मनुष्य के चौथे कर्त्तव्य की पूर्ति प्राणायाम के साथ मन्त्र-जाप से होती है। अपने प्रति मनुष्य का चौथा कर्त्तव्य है स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं आन्तरिक अवयवों को शुद्ध, पवित्र और बलशाली बनाना। अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को लम्बी आयु की आवश्यकता है और आयु को बढ़ाने का सर्वोत्तम साधन है 'प्राणायाम'। योगदर्शन में प्राणायाम के पूर्व आसन का

उल्लेख है। यों भी, प्राणायाम पद्मासन या सुखासन में ही करना चाहिए। प्राणायाम मन्त्रों के पूर्व यह लिखा है कि 'पुनः शास्त्रोक्त रीति से प्राणायाम की क्रिया करता जाए और नीचे लिखे मन्त्रों का जप भी करता जाए। इस रीति से कम-से-कम तीन और अधिक-से-अधिक २१ प्राणायाम करे।' प्राणायाम का अर्थ है प्राणों को यथाशक्ति रोकना। ऋषिवर दयानन्द के शब्दों में ''प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे।''(सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास,पृ. २८) प्राणायाम के चार प्रकारों का उल्लेख स्वामी जी ने किया है। वे हैं-१. बाह्यविषय २. आभ्यन्तर ३. स्तम्भवृत्ति ४. बाह्याभ्यान्तरविषयाक्षेपी। प्राणायाम से उत्तरोत्तर अशुद्धि का नाश, ज्ञान का प्रकाश तथा इन्द्रियों के दोष क्षीण हो जाते हैं। (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास पृ. २८) प्राणायाम करते समय प्राणायाम के मन्त्रों के जाप के साथ उनके अर्थ पर भी विचार कर यह भाव मन में बिठाना चाहिए कि ईश्वर प्राणों से भी अधिक प्रिय, दुःखों का नाश करने वाला, सुख देने वाला, सबसे महान्, सारे संसार को उत्पन्न करने वाला, दुष्टों को दण्डित करने वाला एवं सत्य-स्वरूप है।

अपने प्रति मनुष्य का पाँचवाँ कर्त्तव्य है हृदय में परमात्मा के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न करना। अघमर्षण के मन्त्रों द्वारा इस कर्त्तव्य-कर्म की पूर्ति संभव है। अघ का अर्थ है पाप और मर्षण का अर्थ है मर्दन, दबाना या मारना। साधक अपनी पाप-वृत्ति का इतना मर्दन करे कि पाप-वासनाएँ उसके मन में उत्पन्न ही न हों, साथ ही ईश्वर की सृष्टि-रचना की अद्भुत सामर्थ्य और उसकी असीम शक्ति को देखकर साधक के मन में ईश्वर के प्रति अटूट एवं सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हो जाए। वस्तुतः जब हम किसी को गुण-कर्म में अन्यों से बढ़-चढ़कर और विशिष्ट पाते हैं तो उसके प्रति हमारे मन में श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो जाता है। सृष्टिकर्त्ता ईश्वर जैसी सामर्थ्य और किसी में हो सकती है? किसी में भी नहीं। अघमर्षण के तीन मन्त्रों में ईश्वर द्वारा सृष्टि की रचना का वर्णन है। सर्वव्यापी, प्रकाशमान, सर्वसमर्थ प्रभु की सामर्थ्य से ज्ञान (वेदविद्या), जीव एवं त्रिगुणात्मक प्रकृति, प्रलय, महासमुद्र उत्पन्न हुए। तदुपरान्त ईश्वर ने संवत्सर (वर्ष) और इसके विभागों-दिन, रात आदि बनाये। प्रथम कल्प के समान उस सर्वसमर्थ परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं अन्य लोक-लोकान्तरों की रचना की। पं. चमूपति जी इस मत से सहमत नहीं कि ''अमुक पदार्थ पहले हुआ, अमुक पीछे से।'' उनके मत में ''परमात्मा को सृष्टिकर्त्ता तथा (वशी) नियन्ता बताकर सृष्टि की सामग्री (प्रकृति) और जीव के अनादि होने पर बल दिया है और प्रलय तथा सृष्टि-प्रवाह की अनादिता का अपूर्व वर्णन किया है।'' (संध्यारहस्य, पृ. ३१) संक्षेप में इन्द्रिय स्पर्श से अघमर्षण तक के मन्त्रों से मनुष्य के अपने प्रति कर्त्तव्य-कर्म की पूर्ति संभव है, पर प्रार्थना के साथ पुरुषार्थ भी आवश्यक है।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अतः सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अतः लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय

मुक्ति का द्वार

स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती

ओम् नाम की महिमा- यह 'ओ३म्' नाम ईश्वर का पवित्र, निज व सर्वोत्तम नाम है। वेदादि सच्छास्त्रों में पदे-पदे इसका सुन्दर वर्णन हुआ है, तथैव ऋषि, मुनि, योगीजनों व विद्वानों ने अपने अनुभव के आधार पर इस ओम् नाम की महिमा का विपुल गुणगान किया है। इतना ही नहीं, ब्रह्मविद्या के उपनिषद् ग्रन्थों में भी इसका विस्तारपूर्वक व्याख्यान किया गया है। इसी के साथ युक्तियुक्त बात को ग्रहण और अयुक्त के परित्याग का आदेश करने वाले दर्शन-ग्रन्थों में इसके द्वारा उपासना का विधान किया गया है, क्योंकि इसी 'ओ३म्' नाम के स्मरण व उपासना की आज्ञा वेदों में सर्वत्र विद्यमान है। 'ओ३म्' पदवाक्य परमात्मा का साक्षात्कार, मनुष्य के कल्याण का तथा मोक्ष का एकमात्र निदान है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास के प्रारम्भ में मन्त्रार्थ में लिखा है- ''(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे -अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तेजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है इत्यादि।''

ऐतरेयब्राह्मण में आया है-

प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान् स्यामिति, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वेमाँल्लोकानसृजत- पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं ताँल्लोकानभ्यतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतिंष्यजायन्ताग्निरेव पृथिव्या अजायत, वायुरन्तरिक्षादादित्यो दिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त, ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात्, तान् वेदानभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त, भूरित्येव ऋग्वेदादजायत, भुव इति यजुर्वेदात्, स्वरिति सामवेदात्।। इति।

ऐतरेयब्राह्मण- पं. ५ अ. २५ खं. ७

प्रजापति ने कामना की कि मैं प्रजोत्पादन के द्वारा बहुत हो जाऊँ। उन्होंने तप किया। उन्होंने तप करके इन लोकों को उत्पन्न किया। १. पृथ्वी को २. अन्तरिक्ष को और ३. स्वर्ग को। पुनः उन तीनों लोकों की (पर्यालोचना की अर्थात् इन लोकों में क्या सारभूत सम्पादनीय है?)। उन पर्यालोचित लोकों से (प्रजापति के संकल्प के अनुसार अग्नि, वायु और आदित्य रूप) तीन ज्योतियाँ उत्पन्न हुईं। पृथ्वी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु और द्यौ से सूर्य उत्पन्न हुए। उन तीनों ज्योतियों की पुनः पर्यालोचना की। उन पर्यालोचित ज्योतियों से तीन वेद उत्पन्न हुए। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और आदित्य से सामवेद उत्पन्न हुए। उन तीनों वेदों की पुनः पर्यालोचना की। उन पर्यालोचित वेदों से (व्याहृति त्रय रूप में पापरूप तम के निवारणार्थ) तीन ज्योतियाँ उत्पन्न हुईं। ऋग्वेद से 'भूः' यजुर्वेद से 'भुवः' और सामवेद से 'स्वः' (नामक व्याहृति) उत्पन्न हुईं।

तानि शुक्राण्यभ्यतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकार इति, तानेकधा समभरत् तदेतदो३मिति, तस्मादोमोमिति प्रणेत्योमिति वै स्वर्गो लोक ओमित्यसौ योऽसौ तपति।। इति।

ऐतरेयब्राह्मण - पं. ५ अ. २५ खं. ७

उन्होंने उन व्याहृति त्रयरूप ज्योतियों का पुनः पर्यालोचन किया। उन पर्यालोचित ज्योतियों से तीन वर्ण उत्पन्न हुए- अकार, उकार और मकार। उन्होंने उन तीनों को एक साथ संयोजित कर दिया। वह एकीभूत वर्णत्रय ही 'ओम्' हुआ। इसीलिए होता सभी के सारस्वरूप 'ओम्' इस प्रणव को प्रयोग के मध्य कहता है। वस्तुतः यह सभी प्रयोग के संग्रहार्थ होता है। वह यह 'ओम्' (स्वर्ग प्राप्ति का कारण होने से) स्वर्गलोक है, तथा जो यह आदित्य तप रहा है वह ओंकारस्वरूप ही है; (क्योंकि प्रणव आदित्य की प्राप्ति में साधन रूप है।)

अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ है। इसमें 'ओ३म्' नाम-वाच्य की महिमा का वर्णन ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही प्रपाठक १ कण्डिका १ में इस प्रकार आया है-

ओं ब्रह्म ह वा इदमग्र आसीत्, अर्थात् ओम् (रक्षक परमात्मा है), ब्रह्म (सबसे बड़ा परमात्मा) ही निश्चय करके इस (जगत्) के पहिले था।

आगे इसी प्रपाठक १ की कण्डिका ५ में बड़े विस्तार से सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन आया है, यहाँ हम संक्षेप में उसका भावार्थ दे रहे हैं-

भावार्थ- ऋषि महात्माओं ने ब्रह्म को उसके प्रकट किये हुये ज्ञानों और विज्ञानों द्वारा सब ज्ञानों और विज्ञानों का सार एक 'ओम्' को सर्वरक्षक सर्वव्यापक परमात्मा माना है।

पुनः इसी प्रपाठक १ की कण्डिका १७ से कण्डिका ३० तक 'ओम्' की महिमा से समन्वित बड़े विस्तार से सृष्टि उत्पत्ति आदि का वर्णन आया है। जिज्ञासु जन इस पते पर जाकर आनन्द का रसपान कर सकते हैं।

मनुस्मृति में मनु भगवान् ने कहा है-

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च।।

मनु. २-७६

परमात्मा ने 'ओ३म्' शब्द में 'अ' 'उ' और 'म्' अक्षरों तथा-'भू', 'भुवः' 'स्वः' गायत्री मन्त्र की इन तीन व्याहृतियों को तीनों वेदों से दुहकर साररूप में निकाला है।

निरुक्त में भगवान् यास्क ऋग्वेद के मन्त्र-**''चत्वारि वाक्परिमिता पदानि''** ऋ. १-१६४-४५ की व्याख्या इस प्रकार करते हैं- **''कतमानि तानि चत्वारि पदानि? ओङ्कारो महाव्याहृतयश्चेत्यार्षम्।''** अर्थात् वाक्यस्वरूप ब्रह्म या वेद का वर्णन करने वाले वे चार पद कौन से हैं? ओंकार अर्थात् 'ओम्' अक्षर और 'भूः' 'भुवः', 'स्वः' ये तीन महाव्याहृतियाँ।

भगवान् यास्क 'ओम्' अक्षर के महत्त्व पर प्रकाश डालने हेतु निम्न मन्त्र प्रस्तुत करते हैं (नि. १३-१०)

ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।

ऋ. १-१६४-३९

अर्थात् ऋग्वेदादि से प्रतिपादित जिस सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वरक्षक 'ओम्-वाच्य' ब्रह्म में सूर्य, चन्द्र आदि सब देव आधेय रूप में स्थित हैं, जो मूर्ख उस ओम्-वाच्य ब्रह्म को नहीं जानता, वह ऋग्वेदादि वेदों से क्या करेगा? अर्थात् उसका वेदाध्ययन सर्वथा निष्फल है, परन्तु जो उस अक्षर को जानते हैं, वे ये विद्वान् ही उन ऋग्वेदादिकों के द्वारा ओम्-वाच्य ब्रह्म में मिलकर रहते हैं।

यास्क भगवान् इसी मन्त्र की व्याख्या में आचार्य शाकपूणि और ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन उद्धृत करते हुए कहते हैं-

''कतमत्तदेतत् अक्षरम्? ओमित्येषा वागिति शाकपूणिः। ऋचश्च ह्यक्षरे परमे व्यवने धीयन्ते नानादेवतेषु च मन्त्रेषु। एतद्ध वा एतदक्षरं यत्सर्वा त्रयीं विद्यां प्रतिप्रति'' इति च ब्राह्मणम्।।-१०

विद्वानों ने 'अक्षर' के भिन्न-भिन्न तीन अर्थ माने हैं, जिनका उल्लेख आचार्य ने इस प्रकार किया है-

शाकपूणि कहता है कि 'ओम्-शब्द-वाच्य' ब्रह्म 'अक्षर' है। ऋग्वेदादि सब वेद इसी सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वरक्षक 'अक्षर' में स्थित हैं और इसलिये नाना देवता वाले सब मन्त्रों में यही 'अक्षर' वर्णित है। अर्थात्-'ओम्-शब्द-वाच्य' ब्रह्म चारों वेदों का प्रतिपाद्य विषय है और अतएव अग्नि, वायु, आदित्य अश्विनौ आदि सब देवताओं से वही एकमात्र अभिप्रेत है। ब्राह्मण में भी कहा है कि यह ओम् पदवाच्य ब्रह्म ही यह 'अक्षर' है जो कि संपूर्ण त्रयी विद्या का प्रतिनिधि है।

कठोपनिषद् में यमाचार्य तीसरे वर के सन्दर्भ में कहते हैं कि हे नचिकेता! तूने संसार की विभिन्न प्रकार की कामनाओं की आधारभूत-पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा को बड़े सोच-विचारकर धैर्य के साथ त्याग दिया है, हमारे लिये तेरे जैसा जिज्ञासु बड़ी कठिनाई से मिलता है। यमाचार्य कहते हैं-

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।
एतद्ध्येयत्राक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येयत्राक्षरं परम्।
एतद्ध्येयत्राक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।

एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनꣳ ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।

कठ. २-१५,१६,१७

अर्थात् जिस पद का सब वेद बार-बार वर्णन करते हैं, सब तप जिसके लिए किये जाते हैं, जिसकी कामना में ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, संक्षेप में वह शब्द तुझे बताता हूँ-वह शब्द 'ओ३म्'-यह है।

यह 'ओ३म्' एक अक्षर है, परन्तु यही ब्रह्म है, यही सबसे परे है, इसी अक्षर को जानकर जो कोई कुछ चाहता है, उसे वह प्राप्त हो जाता है।

इसी का सबसे बड़ा सहारा है, इसी का सबसे अन्तिम सहारा है, इसी सहारे को जानकर ब्रह्मलोक में मनुष्य महान् हो जाता है।

इसी संदेश में प्रश्नोपनिषद् का एक कथानक दृष्टव्य है। शिवि का पुत्र सत्यकाम पिप्पलाद ऋषि से पूछने लगा-

स यो ह वैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत।
कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति।।

प्रश्न ०५/१-७ तक

''हे भगवन्! जो व्यक्ति जीवन भर ओंकार का ध्यान करे वह ऐसे ध्यान से किस लोक को जीत लेता है?''

पिप्पलाद ऋषि ने उत्तर दिया- हे सत्यकाम! ब्रह्म के दो रूप है-एक 'पर-ब्रह्म' दूसरा 'अपर-ब्रह्म'। योगी लोग इस संसार के विषयों से परे हैं, उस-'पर' की उपासना करते हैं, वे 'पर-ब्रह्म' के उपासक हैं। 'पर-ब्रह्म' तथा 'अपर-ब्रह्म' दोनों का समन्वय-'ओंकार' में हो जाता है- ओंकार की उपासना ही 'पर' तथा 'अपर' ब्रह्म की उपासना है।

अगर भक्त-पुरुष 'ओंकार' की एक मात्रा का भी ध्यान करे, अर्थात् ओंकार में थोड़ा-सा भी चित्त लगाये, तो वह उतने से ही सचेत हो जाता है, उसका आत्मा जाग उठता है और वह संसार में बड़ी जल्दी जगत् की सुख-सामग्री का सम्पादन कर लेता है।

अगर भक्त-पुरुष 'ओंकार' की दो मात्राओं का ध्यान करता है, अर्थात् ओंकार में और अधिक चित्त लगाता है, वह उससे मानसिक जगत् की सम्पूर्ण सुख-शान्ति का सम्पादन कर लेता है। पार्थिव-जगत् के सुख-भोग मिलने पर भी मानसिक-शान्ति नहीं मिलती, धनी भी दु:खी तथा अशान्त हो सकता है। 'द्विमात्र' का ध्यान मानो ऋक् के साथ यजुर्वेद का भी ध्यान है। इस प्रकार जो ध्यान करता है वह अन्तरिक्ष में-'सोम-लोक' में जा पहुँचता है। वह सोम-लोक की विभूति का अनुभव करके फिर यहाँ लौट आता है।

और जो भक्त-पुरुष त्रिमात्र 'ओंकार' अर्थात् कुछ-कुछ नहीं, बहुत-कुछ भी नहीं, परन्तु ब्रह्म ही ब्रह्म की उपासना करता है, जो -'ओंकार' की तीनों मात्राओं से, तीनों अक्षरों से- अ उ म् से परम-पुरुष का, ब्रह्म का ध्यान करता है, उसी में चित्त लगाये रखता है, अन्य सब जगह से अपने को हटा लेता है, उसमें तेज उत्पन्न हो जाता है, वह सूर्य के समान तेज का सम्पादन कर लेता है। जैसे साँप केंचुली को छोड़ देता है वैसे वह पाप को छोड़ देता है। त्रिमात्र का ध्यान मानो-ऋक्, यजु के साथ साम का ध्यान है। वह सामवेद से 'ब्रह्मलोक' में जा पहुँचता है। वह जीवन के इसी शरीर से परे-से-परे संसार की महान् पुरी में शयन कर रहे पुरुष को-'परब्रह्म' को देख लेता है।

आत्मा के एक तरफ संसार के विषय हैं, दूसरी तरफ ब्रह्म है। अभी तक हमारे लिये संसार जीवित है, ब्रह्म मृत है। ओंकार की मात्रा का ध्यान संसार को हमारे लिये मृत बना देता है, ब्रह्म को जीवित बना देता है। 'ओंकार' की उपासना से उपासक उस 'शान्त', 'अजर', 'अमृत', 'अभय' 'पर-ब्रह्म' को प्राप्त कर लेता है।

मुण्डकोपनिषद् के ऋषि अंगिरा ने जिज्ञासु शौनक को उपदेश देते हुए कहा-

प्रणवो धनु: शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।
यस्मिन्द्यौ: पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मन: सह प्राणैश्च सर्वै:।
तमेवेकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुंचथामृतस्यैष सेतु:।।
अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्य:।
स एवोऽन्तश्चरते बहुधा जायमान:।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति व: पाराय तमस: परस्तात्।।

मुण्ड. २/२/४-६

हे शौनक! प्रणव धनुष है, आत्मा शर है, ब्रह्म लक्ष्य

है। अप्रमत्त होकर इस लक्ष्य का वेध करे, फिर जैसे शर लक्ष्यमय हो जाता है, वैसे आत्मा ब्रह्ममय हो जाता है।

द्यु, पृथिवी, अन्तरिक्ष अर्थात् यह 'ब्रह्माण्ड' एवं मन तथा सभी प्राण अर्थात् यह छोटा 'पिंड' उसी ब्रह्म में ताने-बाने की तरह ओत-प्रोत है। उसी एक आत्मा को पहिचानो। कहा भी है- **''तमेव एकं जानथ''**, अन्य बातें करना छोड़ दो-**''अन्या वाचो विमुंचथ''**। दुःखमय भवसागर से पार होकर अमृत तक पहुंचने का वही पुल है- **अमृतस्य एष सेतुः।**

जैसे भिन्न-भिन्न आरे रथ की नाभि में जड़े होते हैं, जैसे भिन्न-भिन्न नाड़ियाँ हृदय में संहत हो जाती हैं, वैसे ही अनेक रूपों में प्रकट होने वाला वह विराट्-पुरुष हमारे हृदय के भीतर ही विचरता है। उस आत्मा का 'ओंकार' के रूप में ध्यान करो, तुम्हारा कल्याण होगा, गाढ़ान्धकार के परले पार ले जाने का यही साधन है।।

माण्डूक्योपनिषद् के ऋषि ने भी ओम् की महिमा का गुणगान निम्न प्रकार से किया है-

ओमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ।।

मां. -१

'ओम्' यह एक छोटा-सा अक्षर है, परन्तु अखिल संसार इसी एक अक्षर की व्याख्या है, भूत-वर्तमान-भविष्यत् सब ओंकार का ही विस्तार है। जो भूत, वर्तमान तथा भविष्यत्-इन तीनों कालों में नहीं समाता, जो त्रिकालातीत है, वह भी 'ओंकार' का ही प्रसार है।

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति।। ८

अक्षरों की मात्राओं में उस आत्म-तत्त्व का वर्णन किया जाय, तो उसे 'ओंकार' कहते हैं। अक्षर और मात्रा में कोई खास भेद नहीं है। अक्षर ही मात्रा है, मात्रा ही अक्षर है। वे अक्षर वा मात्राएँ-'ओंकार', 'उकार' तथा 'मकार' हैं। ऋषि ने और भी बड़े विस्तार से व्याख्यान किया है। जिज्ञासु पाठक वहीं पर देखें।

तैत्तिरीय उपनिषद् में 'शिक्षाध्याय-वल्ली' के प्रथम तथा द्वितीय अनुवाक के श्लोकों का प्रारम्भ ऋषि ने- **''ओम् शं नो मित्रः शं वरुणः''** तथा **ओम् शिक्षां व्याख्यास्यामः** से प्रारम्भ करके 'ओम्' की महिमा का प्रतिपादन किया है। पुनः आगे कहा है-

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्। ओमित्येतदनुकृति ह स्म वा अप्योꣳश्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओꣳशोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्म प्रस्तौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नुवानीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति।।

तै. उ. शिक्षा. अनु. ८-१।।

'ओम्' ही ब्रह्म है, 'ओम्' ही यह सब कुछ है संसार 'ओम्' की ही अनुकृति है, गुरु शिष्य को पाठ सुनाने के लिये जब कहता है, तब शिष्य 'ओम्' कहकर ही पाठ सुनाता है, 'ओम्' कहकर साम का गान करता है। शास्त्र-पाठ 'ओम्' से, और समाप्ति 'शमोम्' 'ओम्' से होती है। अध्वर्यु 'ओम्' कहकर यजुर्वेद का पाठ करता है, ब्रह्मा 'ओम्' से परमात्मा की स्तुति करता है और कहता है कि मैं ब्रह्म को प्राप्त करूँ, इस प्रकार वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

छान्दोग्य-उपनिषद् विशाल है, इसके प्रथम प्रपाठक के तेरहों खण्डों में उद्गीथ अर्थात् ओंकार की उपासना का विस्तृत वर्णन आया है, हम कुछ उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं-

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत, ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्।।

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः।।

छान्दो. प्र. १ खं. १-१,२

'ओम्'-यह अक्षर 'उद्गीथ' है, इस उद्गीथ की उपासना करे। गायक 'ओम्' ही का उच्च स्वर से गान करता है, उसी का आगे व्याख्यान है।

पाँचों महाभूतों का रस पृथिवी है, पृथिवी का रस जल है, जलों का रस ओषधियाँ है, ओषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाणी है, वाणी का रस ऋक् अर्थात् भगवान्

की स्तुति है, ऋक् का रस साम, अर्थात् प्रभु के नाम का गायन है, साम का रस उद्गीथ, अर्थात् 'ओंकार' का **उत्-अर्थात् उच्च-स्वर से, 'गीथ' अर्थात् गान है।**

आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं,
विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त...।।

छन्दो. प्र. १-खं. २ -१४

जो ओंकारोपासना के रहस्य को जानता हुआ इस प्रकार अक्षर उद्गीथ की उपासना करता है, वह ओंकार के 'सघोष-नाद' से कामनाओं को पूर्ण करने वाला हो जाता है।

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवꣳसामैवं
यजुरेष उ स्वरो।
यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता
अभया अभवन्।।

छान्दो. प्र. १ खं. ४-४

तभी तो ऋचाओं के मर्म को पाकर 'ओ३म्' का दीर्घ-स्वर से उच्चारण किया जाता है। साम तथा यजु के मर्म को पाकर 'ओ३म्' का दीर्घ-स्वर से उच्चारण किया जाता है। 'ओ३म्' यही 'स्वर' है, जो 'अक्षर' है, 'अमृत' है, 'अभय' है। इसी 'ओ३म्' में लीन होकर देव-लोग 'अमृत' तथा 'अभय' हो गये।

जो उद्गीथ है, वह प्रणव है, जो प्रणव है, वह उद्गीथ है। यह सूर्य मानो उद्गीथ है, प्रणव है, ओ३म् है, यह सूर्य मानो उच्च स्वर से ओंकार का घोष करता हुआ उदित होता है।

पुरातन ऋषि महर्षि, चाहे वे धर्मप्रवर्तक हों, चाहे किसी विद्या या कला के आविष्कारक हों, एक बात तो यह है कि वे अपने सभी विषय को वेद से अनुमोदित या आविष्कृत हुआ घोषित करते हैं, दूसरी बात यह है कि वे पूर्णतः आस्तिक थे, उनका प्रत्येक कार्य आस्तिक भाव से ओतप्रोत रहता था। वह चाहे धार्मिक कृत्य हों अथवा किसी कला विशेष का आविष्कार हो, ईश्वर की स्तुति से ही प्रारम्भ करते थे। पहली बात के अन्तर्गत विमानकला के आविष्कारक या प्रवर्तक महर्षि भारद्वाज ने भी वेद से ही विमानकला का आविष्कार किया है यथा-''**निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधि भरद्वाजो महामुनिः। नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्व रूपकम्**'' (वृत्तिकार बोधानन्द यतीश्वर के अनुसार-वृत्ति १०) अर्थात् भरद्वाज महामुनि ने वेद-समुद्र का निर्मन्थन करके '**यन्त्रसर्वस्व**' ग्रन्थ जिसका एक भाग (वैमानिक प्रकरण) है, मक्खनरूप में निकालकर दिया है। (महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित-वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है तथा वेद-भाष्य में भी वेदों में स्थान-स्थान पर विमान-विद्या का वर्णन मिलने के संकेत दिये हैं, उक्त श्लोक से महर्षि की उपरोक्त दोनों स्थापनाओं की पुष्टि सहज ही होती है।)

दूसरी बात ईश्वर की स्तुति 'ओंकार' नाम से होने से प्रस्तुत लेख से प्रासंगिक भी है यथा-''...**काठके माण्डूक्ये च यदोंकारः परापर विभागतः।**'' (वृत्ति १५) भरद्वाज मुनि ने इस मंगलाचरण में कठप्रोक्त और माण्डूक्य उपनिषद् में जो ओंकार-ओम्, पर-अपर विभाग रूप से वर्णित है, वह ब्रह्म-प्राप्ति के अर्थ आदर से कहा गया है। संक्षेप में इतना ही।

योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि ने कहा है- **तस्य वाचकः प्रणवः।।** (योग. १-२७) अर्थात् उस ईश्वर का बोधक=नाम 'ओम्' है। इस सूत्र के भाष्य में व्यास मुनि कहते हैं- ''**वाच्य ईश्वरः प्रणवस्य। किमस्य संकेतकृतं वाच्यवाचकत्वमथ प्रदीप प्रकाशवदवस्थितमिति।**''

अर्थात् 'प्रणव' का वाच्य 'ईश्वर' है। प्रणव एवं ईश्वर का वाच्य-वाचक सम्बन्ध संकेतकृत है अथवा प्रदीप एवं उसके प्रकाश के समान अवस्थित है।

यजुर्वेद में ओम् की महिमा का वर्णन आया है, देखिये-

ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं स्मर।।

यजु. ४०-१५

(स्वामी दयानन्दकृत भाष्य) हे कर्म करने वाले जीव! तू शरीर छूटते समय 'ओ३म्' इस नामवाच्य ईश्वर को स्मरण कर, अपने सामर्थ्य के लिये परमात्मा और अपने स्वरूप का स्मरण कर, अपने किये का स्मरण कर।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म।।

यजु. १०-१७

अर्थात् जो वह प्राण वा सूर्य्यमण्डल में पूर्ण परमात्मा है वह परोक्षरूप मैं आकाश के तुल्य व्यापक, सबसे गुण, कर्म और स्वरूप करके अधिक हूँ, सबका रक्षक जो मैं

उसका 'ओ३म्' ऐसा नाम जानो।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी कहा है- '**ओंकारः' स्वर्गद्वारम्।** (आप. धर्म. १.१३.६) अर्थात् ओंकार स्वर्ग-प्राप्ति का दरवाजा है।

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! अपने स्तोताओं को सुखी-आनन्दित कीजिए। कैसा आनन्द?-''**यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते। कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव।।**'' ऋ. ०९-११३-११

हे सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर! जिस आप में सम्पूर्ण आनन्दित तथा सम्पूर्ण हर्षित और सम्पूर्ण प्रसन्नता और प्रकृष्ट सुख-युक्त मुक्त-पुरुष विराजमान होता है, जिस आप में अभिलाषी पुरुष को सब कामनाएँ सहज ही प्राप्त होती हैं, उसी अपने स्वरूप में आनन्दैश्वर्य के लिए मुझको मोक्ष का भागी करें। हे परमात्मन्! आप मुझ मुमुक्षु के लिए पूर्णाभिषेक का निमित्त बनें। सब स्तोताओं को भी सब ओर से आनन्दित कीजिए। इत्योम्।।

मिलकर होली पर्व मनाओ

पं. नन्दलाल निर्भय सिद्धान्ताचार्य

सकल विश्व के सब नर-नारी, मिलकर होली पर्व मनाओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।
फाल्गुन मास पूर्णिमा के दिन, यह त्यौहार मनाते हैं सब।
हलवा-पूरी, खीर, पकोड़े, बड़े चाव से खाते हैं सब।।
नीला, पीला, हरा, गुलाबी, लाल रंग वर्षाते हैं सब।
यज्ञ हवन, सत्संग कीर्तन, करते और कराते हैं सब।।
नशेबाज हैं जो नर-नारी, उनके सब दुर्व्यसन छुड़ाओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।१।।

याद रखो, अय दुनिया वालो, नव सस्येष्टि यज्ञ है होली।
आर्य पर्व है, वेद पढ़ो तुम, करो न गंदी कभी ठिठोली।।
बातों में मिश्री सी घोलो, सबसे बोलो मीठी बोली।
दान करो, दानी बन जाओ, युवक-युवतियों की सब टोली।।
दुखियों-दीन अनाथ जनों को, खुश होकर के गले लगाओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।२।।

चोरी करना, जुआ खेलना, बुरे काम माने जाते हैं।
मांसाहारी दुष्ट शराबी, कहीं नहीं आदर पाते हैं।।
धर्म-द्रोही धूर्त्त नास्तिक, नफरत से देखे जाते हैं।
चरित्रहीन व्यभिचारी गुण्डे, मार सदा जग में खाते हैं।।
जो वैदिक पथ भूल गए हैं, उनको वैदिक मार्ग बताओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।३।।

जगत् पिता जगदीश्वर की, महिमा ना गाना महापाप है।
अच्छी संगति तज गंदी-संगति में जाना महापाप है।।
ईश्वरभक्तों विद्वानों की हँसी उड़ाना महापाप है।
परधन परनारी पर सुन लो, कुदृष्टि लगाना महापाप है।।
त्यागी सन्त तपस्वी हैं जो, उनको खुश हो शीर्ष नवाओ।
प्यार प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।४।।

अण्डे, मछली, मुर्गा, तीतर, बकरा खाना महापाप है।
मानवता के हत्यारों का साथ निभाना, महापाप है।।
श्रीकृष्ण जैसे योगी को, दोष लगाना, महापाप है।
गोपी, वल्लभ व राधा प्रेमी, चोर बताना महापाप है।।
ढोंगी पाखण्डी पोपों की, पोल खोल दो आगे आओ।
प्यार प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।५।।

परोपकारी बनो साथियो! मानव हो मानवता धारो।
निद्रा त्यागो होश संभालो, राम, कृष्ण के पुत्र दुलारो।।
आए हो किस लिए जगत् में बैठ तनिक एकान्त विचारो।
अगर मारना है तुमको तो, बुरी भावनाओं को मारो।।
'नन्दलाल निर्भय' दुनिया में अपना नाम अमर कर जाओ।
प्रेम-प्यार का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।६।।

जिसके माता और पिता विद्वान् न हों उनके सन्तान भी उत्तम नहीं हो सकते। **-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.९**

महापुरुषों का अपमान कब तक होता रहेगा?

डॉ. चन्द्रशेखर लोखंडे

अभी हाल ही मीडिया में यह खबर हड़कम्प मचाती रही कि आध्यात्मिक विश्वविद्यालय के संचालक वीरेन्द्र देव दीक्षित द्वारा उसके आश्रमों में लड़कियों का यौन शोषण किया जाता रहा है। इस कारण अनेक आश्रमों में कैद लड़कियों को पुलिस ने छुड़ाया तथा वीरेन्द्र देव पर पुलिस कार्यवाही कर उसे फरार घोषित किया।

वीरेन्द्र देव दीक्षित ने प्रजापिता ब्रह्माकुमारी विश्वविद्यालय से अलग होकर उसने आध्यात्मिक विश्वविद्यालय के नाम से अपने आश्रम खोल दिये थे तथा विशेष बात यह कि जहाँ-जहाँ प्रजापिता ब्रह्माकुमारी के आश्रम हैं उन्हीं के आस-पास उसने अपने आध्यात्मिक केन्द्र खोल रखे थे। इससे आपको अन्दाजा लग सकता है कि यह किसी इरादे से खोले गये होंगे।

बाबा रामरहीम के कारनामों के बाद अब वीरेन्द्र देव दीक्षित पर कार्यवाही की जा रही है। अब तक ऐसे १५ बाबाओं पर समाज-बाह्य कृत्यों के लिए पुलिस ने उन पर कार्यवाही की है। बाबा रामरहीम की तरह ही वीरेन्द्र देव दीक्षित भी अपने आपको अवतार सिद्ध करने में जुटा हुआ था।

वीरेन्द्र देव दीक्षित तो कहता है कि मैं श्रीकृष्ण का अवतार हूँ और कन्याओं को चाहिए कि वे मुझ पर अपना तन, मन समर्पण कर स्वयं का उद्धार कर लें। मैं श्रीकृष्ण की तरह १६ हजार कन्याओं के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाकर स्वयं को भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार सिद्ध करना चाहता हूँ। यह कैसी सोच है, यह कैसा अध्यात्म है? क्या हिन्दू धर्ममार्तण्ड इस घृणित सोच की तह तक जायेंगे?

कोर्ट ने भी सन् २०१० में भगवान् श्रीकृष्ण को प्रत्यक्ष न्यायालय के कटघरे में ही खड़ा कर दिया था। ''जब श्रीकृष्ण और राधा विवाह पूर्व सम्बन्ध रख सकते हैं तो आज के युवक-युवती विवाह पूर्व सम्बन्ध क्यों नहीं रख सकते?'' (दै. लोकमत, महाराष्ट्र और परोपकारी)क्या पौराणिक भागवत कथाकार योगीराज श्रीकृष्ण पर लगे इन आरोपों को सिरे से खारिज करने की हिम्मत दिखायेंगे? भागवत् पुराण का हर कथावाचक भोलीभाली हिन्दू जनता की भावनाओं का शोषण कर रहा है। अपने धार्मिक बाड़ों में खींचने के लिए राधा-कृष्ण के नाम पर शृंगारिक चाशनी में भिगोकर कथाकार घटनाओं को परोसते हैं। गरबा, डांडिया आदि नृत्य भगवान् पुराण की ही सन्तान हैं। राधा और कृष्ण की आत्मा और परमात्मा के साथ बेतुकी तुलना कर श्रद्धालुओं की शृंगारिक भावनाओं को उद्वेलित करना इन भागवतकारों का एक खेल बन गया है, अध्यात्म को शृंगारिक मनोरंजन के माध्यम से रंगीन बनाकर पेश करना इनका पेशा बन गया है। जो श्रद्धालुओं का भावनात्मक और वैचारिक शोषण करता है। जिसका परिणाम आज हिन्दू समाज में दिखाई दे रहा है, वह निम्न से निम्न स्तर की ओर गिरता चला जा रहा है। पहले विधर्मी हिन्दुओं के देवी-देवताओं पर इस तरह आरोप लगाते थे। (व्यक्तिगत चर्चा में आज भी लगाये जाते हैं।) लेकिन क्या किसी को उम्मीद थी कि भारतवर्ष के न्याय मन्दिर में इस प्रकार के प्रश्न उठाये जायेंगे? धर्ममार्तण्डों के ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर फिर से विचार करना होगा और ऐसे कृत्यों की भर्त्सना करनी होगी जिनसे हिन्दू धर्म की बदनामी होती है और यह सत्य सामने लाना होगा कि भगवान् श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विधिपूर्वक विवाह हुआ था और वे एक पत्नीव्रती थे। राधा का उनके साथ कोई समाज-बाह्य सम्बन्ध नहीं था। राधा तो रिश्ते में उनकी मामी लगती थी। क्या कोई मामी से इस तरह के सम्बन्ध रखता है? क्या आज के युवक ऐसे भागवत के काल्पनिक श्रीकृष्ण को मानने के लिए तैयार हैं? धूर्त और चालाक कथावाचकों के बहकावे में आकर श्रद्धालु स्त्री-पुरुष पुराणों के लाञ्छनों को सत्य मानकर स्वीकार करने लगते हैं। यदि श्रीकृष्ण का ही चरित्र देखना है तो महाभारत के श्रीकृष्ण को देखो जो निष्कलंक और पवित्र है। कोई भी कथाकार वा प्रवचनकर्त्ता महाभारत का आदर्श श्रद्धालुओं के सामने प्रस्तुत नहीं करता, न उनके सद्गुणों एवं नैतिक मूल्यों का आदर करता है। योगिराज श्रीकृष्ण के न राधा और न गोपियों के

साथ विवाह बाह्य सम्बन्ध थे। ये तो पुराणकर्त्ता और भागवत कथाकार की अन्तर्निहित विषय लोलुपता थी जो कथाओं के माध्यम से श्रद्धालु समाज के सामने पेश की जाती रही है। इसका दुष्ट हेतु यही है कि किसी भी तरह हिन्दू समाज को अपने बाड़े में कैद करके रखा जाय। लेकिन रोग की बजाय इलाज भयंकर बात हो गयी है क्योंकि इससे श्रद्धालुओं की आज की पीढ़ियाँ अपने पूर्वजों पर सवाल उठा रही हैं। कोर्ट ने भगवान् श्रीकृष्ण को भी न्यायालय के कटघरे में खड़ा कर दिया है। उन पर चली आ रही आख्यायिकों का हवाला देते हुए मा. न्यायाधीश ने कहा कि जब श्रीकृष्ण और राधा विवाह बाह्य सम्बन्ध रख सकते हैं तो आज के युवक-युवती विवाह पूर्व सम्बन्ध क्यों नहीं रख सकते? क्या पौराणिक कथावाचक महाभारत के इस महापुरुष पर लगाई गई इस अनर्गल दलील को सिरे से खारिज कर सकेंगे? न्यायालय की इस दलील के दो मायने निकाले जा सकते हैं। एक तो यह कि देवी-देवताओं के माध्यम से स्वैराचार में लिप्त आज के युवकों के कृत्य का समर्थन करना और दूसरा भागवत पुराण को इन शृंगारिक कथाओं का समाज पर कितना बुरा असर पड़ा है इस पर टिप्पणी करना। आर्यों एवं शुद्ध अध्यात्मवादियों को चाहिए कि ऐसी सोच की जड़ पर ही कुठाराघात कर इसे समूल नष्ट करें जिससे कि आने वाली पीढ़ी तथा विधर्मी हमारे महापुरुषों पर उंगली न उठा सकें और ये भोंदू बाबा अवतारी बनने की कोशिश न कर सकें।

व्याकरण एवं दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी **परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर** में पिछले १८ वर्षों से प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान, पाणिनीय व्याकरण और दर्शनों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अत: व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षायें भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों के लिए निवास और भोजन व्यवस्था नि:शुल्क रहेगी। प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं-

- आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो।
- न्यूनतम १०वीं कक्षा पढ़े हुए विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।
- गुरुकुल के अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होगा।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक - ९४१४००३७५६

समय- ९:००-१०:००प्रात:, १२:३०-१:३० मध्याह्न

पता- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (राज.) ३०५००१

ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय-व्यवस्था से सुख देवे।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.३९

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

जब तक मनुष्य सुख-दु:ख, हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते, इससे मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें। **-महर्षि दयानन्द, यजु.,भा ५.४०**

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद–पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी–छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१ से १५ फरवरी २०१७ तक)

१. कर्नल पी.ए. देवी, पुणे २. श्री देवमुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ३. श्री पुष्कर गोयल, मुजफ्फरनगर ४. श्री मुमुक्षु मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ५. डॉ. रमेश मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ६. स्वामी देवेन्द्रानन्द, ऋषि उद्यान, अजमेर ७. श्री वृद्धिचन्द गुप्त, जयपुर ८. श्री जगदीश कुमार शर्मा, सोनीपत ९. श्रीमती सुशीला शर्मा, गाजियाबाद १०. श्री अनिल वर्मा, भोपाल ११. श्री प्रकाशचन्द सोनी, जबलपुर १२. श्री विपिन कुमार व अनुज कुमार, सहारनपुर १३. श्री जागृतिचन्द्र, शिकागो १४. श्री आशीष शर्मा, अजमेर।

परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१ से १५ फरवरी २०१७ तक)

१. हरसहाय सिंह आर्य, बरेली २. श्रीमती उर्मिला उपाध्याय, ऋषि उद्यान, अजमेर ३. श्री भीम कुमार क्षेत्री, दार्जीलिंग ४. स्वामी देवेन्द्रानन्द, ऋषि उद्यान, अजमेर ५. श्रीमती भँवरी देवी, अजमेर ६. कौतूहल सिंह, अजमेर ७. श्री वृद्धिचन्द गुप्त, जयपुर ८. श्री कन्हैयालाल खाती, अजमेर ९. श्री अंशुल आर्य, मुजफ्फरनगर १०. श्रीमती सरला मेहता, अजमेर ११. श्री जोगेन्द्रसिंह, नई दिल्ली १२. श्रीमती निर्मला गुप्ता, अजमेर १३. श्री मोहनलाल गंगवार, ऋषि उद्यान, अजमेर १४. श्रीमती प्रमिला शर्मा व श्री धीरेन्द्र शर्मा, अमेरिका १५. श्री जयपाल सिंह, गाजियाबाद।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

पाठकों की प्रतिक्रिया

माननीय सम्पादक जी, सादर नमस्ते,

आपके परोपकारी पत्रिका के जनवरी-द्वितीय अंक में प्रकाशित 'वानप्रस्थ' रचना अत्यन्त प्रसन्नतायुक्त एवं प्रशंसनीय है। श्री प्रकाश जी ने बहुत सुन्दर और सरल भाषा में आजकल सब व्यक्ति वैदिक परम्परा में रहना चाहते हैं। उस ने पाँच कर्त्तव्यों के पालन को सरल रूप से समझाया है। जो गृहस्थ में रहते हुए भी वानप्रस्थ के समान है। इस रचना के माध्यम से बहुत सारे वैदिक परिवार उपकृत होगें। चौधरी जी को मेरा सादर नमस्ते। इसके लिए धन्यवाद।

के. उमेश राव पात्र, आर्यसमाज, वड़माल, बलांगीर, ओडिशा।

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

श्री वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज

पं. युधिष्ठिर मीमांसक

*१० मार्च १९४१ स्वामी सर्वदानन्द जी का बलिदान दिवस है। मन में विचार आया कि उनके जीवन पर कोई लेख परोपकारी में दिया जावे। किन्तु जब परोपकारी कुछ पुराने अंक देखें तो उनमें नवम्बर १९६१ का अंक मिला जो कि स्वामी सर्वदानन्द विशेषांक था। उसमें स्वामी जी के जीवन पर कई लेख व कविताए मिलीं। उन्हीं में पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी की गरिमामयी लेखनी से लिखे कुछ पृष्ठ भी मिले। उनके रहते कुछ नया लिखना धृष्टता प्रतीत हुई। इसलिये उसी को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। -**सम्पादक***

श्री वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के नाम से प्रायः सारा आर्यजगत् परिचित है। उत्तर भारत के विरले ही हतभाग्य ऐसे स्थान होंगे, जहाँ दो-चार बार स्वामीजी महाराज ने पदार्पण न किया हो।

जो भी व्यक्ति उनके संसर्ग में कुछ समय के लिए आया उस पर उनकी जिस बात का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता था, वह है उनका वीतराग स्वभाव। उन्हें न किसी स्थान से मोह था, न व्यक्ति से, न किसी समाज विशेष से। इसी प्रकार उनमें संन्यासोचित मौजीपना भी बहुत था। जब चाहा अपनी कम्बलिया उठाई और चल दिए। न उन्हें इस बात की परवाह थी कि समाज आदि के अधिकारी क्या कहेंगे? न मार्ग व्यय की। न कुछ होता तो पैदल ही चल पड़ते। कई बार ऐसा भी हुआ कि अपरिचित समाजों में पहुँचने पर कर्मचारियों द्वारा आर्यसमाज मन्दिर में न ठहरने देने पर मस्जिद और गुरुद्वारे में ही आसन जमा लिया। उनके लिए सब मानव एक समान थे।

श्री स्वामी जी महाराज उन कतिपय व्यक्तियों में से थे जो पौराणिक मतावलम्बी संन्यासियों में से आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हुए थे। इस कारण वे संस्कृत और फारसी के अच्छे विद्वान् थे। संन्यासीपना उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। निरभिमानता की तो वे साक्षात् मूर्ति थे।

आपका श्रेष्ठतम ग्रन्थ 'सन्मार्गदर्शन' प्रथम बार प्रकाशित हुआ, तब उसके एक स्थान के लेख पर आर्यसमाज में कुछ सैद्धान्तिक खलबली उत्पन्न हुई। समाचार पत्रों में अनेक लेख प्रकाशित हुए। पर स्वामीजी महाराज अपने स्वभावानुसार मौन ही रहे। जब सं. १९९५ में श्री सन्तरामजी (श्री महाशय राजपाल जी के भ्राता) ने इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया, उस समय श्री पूज्य गुरुवर पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने उनसे निवेदन किया कि वे विवादास्पद स्थल को ठीक कर दें। तब श्री स्वामी जी महाराज ने एक ही उत्तर दिया-आप जैसा चाहें कर दें, मुझे समाज में विवाद उत्पन्न नहीं करना है।

श्री स्वामी जी महाराज अपने प्रवचनों में यदा-कदा अपने जीवन की मनोरंजक घटनाएं भी सुनाया करते थे। एकबार बच्छोवाली (लाहौर) समाज के उत्सव पर अपने (आर्यसमाज में आने से बहुत पूर्वकालिक) जीवन की घटना सुनाई-''हम कुछ संन्यासी एक बार मेवाड़ में घूमते-फिरते उदयपुर पहुँचे। चातुर्मास्य का काल था। हमारे एक साथी ने आकर कहा कि परसों यहाँ से १० कोस के एक गांव (नाम स्मरण नहीं रहा) में एक सेठ साधु सन्तों के लिए लड्डू का भण्डारा कर रहा है। यह सुनकर सभी १० कोस पैदल चलकर तीसरे पहर उस गाँव में पहुँचे। खाने बैठे तो लड्डू आए जो कि निरे आटे के और वे भी कई महीनों से सूखे हुए। थके और भूखे तो थे ही, न चाहते हुए भी खाने पड़े।'' यह घटना सुनाकर श्रोताओं को उपदेश दिया कि मनुष्य को, विशेषकर साधुओं को इन्द्रियलोलुपता और लालच से दूर रहना चाहिए।

मेरा सम्पूर्ण अध्ययन जिस विरजानन्द आश्रम में हुआ वह श्री पूज्य स्वामीजी महाराज का ही आरम्भ किया हुआ था। पहले पहल १९२० अथवा १९२१ में उनके अपने आश्रम हरदुआगंज पुल काली नदी (अलीगढ़) में ही इस आश्रम का आरम्भ हुआ था। इस आश्रम का आरम्भ ऋषि प्रदर्शित पाठविधि के परीक्षण के लिए हुआ था। पूर्व संस्कारवश यद्यपि स्वामीजी महाराज आर्ष पाठविधि में विशेष आस्था नहीं रखते थे, परन्तु श्री पूज्य गुरुवर्य पं. ब्रह्मदत्त जी की प्रेरणा और आग्रह पर उन्होंने इस आश्रम

को तत्काल आरम्भ कर दिया और उसी समय पहले से विद्यमान विद्यार्थियों को बुलाकर कह दिया कि जिसे अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़ना हो वही यहाँ रह सकता है। जिसे परीक्षाएँ देनी हों वह यहाँ से चला जाए। आरम्भ में इस आश्रम में श्री पूज्य पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, श्री पूज्य पं. शंकर देव जी और श्री पूज्य पं. बुद्धदेव जी उपाध्याय ने मिलकर कार्य आरम्भ किया था। मैं उक्त आश्रम में ३ अगस्त सन् १९२१ में प्रविष्ट हुआ था। कुछ काल पश्चात् पूज्य स्वामी जी महाराज के अमृतसर के प्रेमी सज्जनों के आग्रह पर यह आश्रम नवम्बर १९२१ में अमृतसर चला गया।

श्री पूज्य स्वामीजी महाराज पंजाब में वर्तमान आर्यसमाज की दोनों पार्टियों (गुरुकुल-कॉलेज) से अलग रहते थे। उनके द्वारा आरम्भ किये गए आश्रम के गुरुजनों ने भी इस व्रत का घोर कष्ट सहकर भी पालन किया। अमृतसर में आश्रम की जो प्रबन्धक कमेटी बनी थी उसमें दोनों विभागों के आर्य थे। कुछ समय पीछे ही उनमें रस्साकशी होने लगी। गुरुकुलीय-भाग वाले चाहते थे कि आश्रम गुरुकुल पार्टी में सम्मिलित हो जाए, कॉलेज विभाग-वाले कॉलेज पार्टी में लेना चाहते थे। इस रस्साकशी में अवस्था यहाँ तक पहुँची कि ब्रह्मचारियों के अन्नोदक में भी बाधा पड़ने लगी और उससे पढ़ाई पर भी प्रभाव पड़ने लगा। तब गुरुजनों ने कमेटी तोड़कर प्रबन्ध का भार भी स्वयं संभाला। अन्त में स्थिति यहाँ तक बिगड़ी कि अमृतसर छोड़ना पड़ा। गुरुजन कुछ विद्यार्थियों को (जिनके माता-पिता ने इस भयानक परिस्थिति में भी उन पर भरोसा किया) लेकर काशी चले आए। इस समय श्री पं. ब्रह्मदत्त जी और शंकरदेवजी दोनों गुरुजनों ने (श्री पं. बुद्धदेव जी अमृतसर में ही पृथक् हो गये थे) बड़ी दृढ़ता दिखाई। कुछ भी प्रबन्ध न होने पर काशी जा बैठे।

ऋषि की पाठ-विधि के क्रियात्मक प्रचार का लक्ष्य लेकर अनेक विद्यालय आर्यसमाज में चले, परन्तु श्री परिव्राजकाचार्य स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का आरम्भ किया हुआ विरजानन्द आश्रम भी परिव्राजक बनकर (अलीगढ़-अमृतसर-काशी-अमृतसर, काशी, लाहौर, काशी) अधिक श्रेय श्री पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु को है जो श्री स्वामी सर्वदानन्द के आरम्भ किए गए पौधे को अपने तप, त्याग और विद्या के अमृत जल से सिंचन करते हुए हराभरा रखे हुए हैं।

यदि कहा जाए कि ऋषि दयानन्द के पश्चात् कोई आदर्श संन्यासी आर्यसमाज में पैदा हुए तो वे दो ही थे एक श्री पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी और दूसरे श्री पूज्य दर्शनानन्द जी। इन दोनों परिव्राजकों की परिव्राजकोचित मस्ती और किसी संन्यासी में न दिखाई दी, न दे रही है। यह पूर्ण आत्मविश्वास और ईश्वर-विश्वास से प्रस्फुटित होने वाली मस्ती पूर्व जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों से ही प्राप्त होती है। हर एक इसे पाने में असमर्थ है।

आज श्री पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज हमारे बीच में सशरीर नहीं है, परन्तु वाङ्मयरूपी शरीर में वर्तमान हैं। उनकी कई पुस्तकें लाहौर से प्रकाशित हो चुकी हैं। उन सबमें सबसे श्रेष्ठ 'सन्मार्ग दर्शन' है। यदि कहा जाए कि उपनिषदों के अनन्तर कोई पठनीय उत्तम पुस्तक है तो वह एक मात्र 'सन्मार्ग दर्शन' है, तो यह कहना अत्युक्ति पूर्ण न होगा। जिन्होंने इसे पढ़ा है, वे ही इसका मूल्याङ्कन कर सकते हैं। दु:ख की बात तो यह है कि हम आर्यों में स्वाध्याय की रुचि दिन-प्रतिदिन न्यून होती जा रही है। इसी कारण पूर्व महात्माओं और विद्वानों के उत्कृष्ट ग्रन्थ आज दुर्लभ होते जा रहे हैं। यदि यही अवस्था रही तो एक दिन वह भी आएगा कि प्राचीन ग्रन्थों के नष्ट हो जाने पर हम पूजनीय पूर्वजों के नाम-कर्म आदि के परिज्ञान से भी शून्य हो जायेंगे। इसलिए यदि श्री पूज्य सर्वदानन्द जी महाराज की वास्तविक स्मृति रखनी है तो उसका एकमात्र साधन यही है कि उनकी पुस्तकों का पुनरुद्धार करें। घर-घर में पहुँचाएँ, जिससे बालगोपाल स्त्री-पुरुष सभी उनके उदात्त चरित्र और उपदेशों से अपने जीवन को बनाने में सहायता प्राप्त कर सकें।

यही वास्तविक ऋषितर्पण है, पितृतर्पण है।

मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को नीरोग और मन को धर्म में निवेश करके सदा सुख की उन्नति करें। **-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.१४**

शङ्का समाधान - २०

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- सन्ध्या का अंगस्पर्श मन्त्र-ओम् वाक्-वाक्, ओम् प्राणः प्राणः, ओम् चक्षुश्चक्षुः, ओम् श्रोत्रं श्रोत्रम्, ओम् नाभिः, ओम् हृदयम्, ओम् कण्ठः, ओम् शिरः, ओम् बाहुभ्यां यशोबलम्, ओम् करतल करपृष्ठे।

इसमें वाक् से लेकर शिरः तक आठ बार प्रथमा विभक्ति है, परन्तु बाहुभ्यां यशोबलम् में चतुर्थी तथा करतल करपृष्ठे में सप्तमी है। इन दोनों स्थानों पर विभक्ति-भेद का क्या कारण है?

-जगदीश प्रसाद हरित, गिरदौडा, नीमच।

समाधान- सन्ध्योपासन का प्रथम भाग-उपासना के लिए स्वयं के योग्यता सम्पादनार्थ है। आचमन से चित्त उपासना योग्य सम्पन्न होना सम्भव है, किन्तु इन्द्रिय अथवा बाह्य अङ्गों की विकलता के रहते चित्त की एकाग्रता सम्भव नहीं है। अतः आचमन के अनन्तर अङ्गस्पर्श विहित है। अङ्गस्पर्श के दस वाक्य हैं। आपकी शङ्का खण्ड नौ व दस पर है।

खण्ड नौ- 'बाहुभ्यां यशोबलम्' में द्वितीय पद 'यशोबलम्' समस्त पद है। यशश्च बलञ्च-यशोबलम् (समाहार द्वन्द्व) है। अर्थात् यश और बल। यश एव बलम्-यशोबलम् (कर्मधारय) यश ही बल है अथवा यशरूपी बल। दोनों विग्रह में अर्थ का अपना-अपना महत्त्व है।

बाहू पद से द्वित्व- दो की विवक्षा में तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी द्विवचन में 'बाहुभ्यां' पद निष्पन्न होता है। यहाँ 'बाहुभ्यां' में चतुर्थी विभक्ति न होकर प्रथमार्थ में पञ्चमी है। यश एवं बल का हेतु बाहू को मानने पर तृतीया भी प्रथमार्थ (प्रथमा विभक्ति के अर्थ में ही होगी।) इसे विभक्ति व्यत्यय कहा जा सकता है। आपके द्वारा कथित चतुर्थी मानने पर अर्थ का स्वारस्य ही समाप्त हो जाता है।

अङ्ग स्पर्श के मन्त्रों की संगति के लिए 'यशोबलम्' पद का अपकर्षण कर इसे प्रत्येक खण्ड के साथ अन्वित करना अपेक्षित है। इसी प्रकार 'करतलकरपृष्ठे' में भी, सप्तमी न होकर प्रथमा विभक्ति का द्विवचन है। यहाँ 'यशोबलम्' की अनुवृत्ति होगी।

परोपकारिणी सभा का वनवासी शिविर

महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में परतवाड़ा से २० किलोमीटर की दूरी पर स्वामी श्रद्धानन्द सेवा केन्द्र की ओर से वर्ष २०१८ का पहले युवा शिविर की तिथियाँ कुछ ही दिन में घोषित कर दी जायेंगी। शिविर में १५ से ३० वर्ष तक की आयु के युवक भाग लेंगे। उन्हें सन्ध्या हवन के प्रशिक्षण के साथ-साथ वैदिक सिद्धान्तों का आवश्यक ज्ञान और वैदिक संस्कार भी दिये जावेंगे।

जातिभेद, ऊँचनीच, अस्पृश्यता निवारण के लिये घर-घर, ग्राम-ग्राम ऋषि सन्देश सुनाने की युवकों को प्रबल प्रेरणा दी जावेगी। परोपकारिणी सभा का मार्गदर्शन व सहयोग सेवा केन्द्र को सदा प्राप्त रहता है और रहेगा। दानी सभा को सहयोग करें।

निवेदक- पंकज शाह-परतवाड़ा (शिविर संचालक), राहुल आर्य-अकोला (शिविर व्यवस्थापक)

श्री कन्हैयालाल आर्य को मातृशोक

परोपकारिणी सभा के सदस्य एवं पुस्तकाध्यक्ष मान्यवर श्री कन्हैयालाल आर्य की माता **श्रीमती जमना देवी** का निधन दि. १३ फरवरी २०१८ को गुरुग्राम-हरियाणा में हो गया। स्वर्गीय माता जी निष्ठावान व विदुषी महिला थीं। उनके देहान्त के पश्चात् उनकी देह को दान कर दिया गया, जो कि एक प्रेरक एवं साहसिक कदम है। प्रभु से प्रार्थना है कि पुण्यात्मा माता जी प्रभु की शरणगत हो। परोपकारिणी सभा के सभी अधिकारी एवं सदस्यगण उनकी आत्मा की शान्ति हेतु प्रभु से प्रार्थना करते हैं। प्रभु उनके परिवार को इस क्षति को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

संस्था-समाचार

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर में जयन्ती समारोह- महर्षि दयानन्द शोधपीठ द्वारा आयोजित जयन्ती समारोह में प्रातः १० बजे ब्रह्मचारियों द्वारा यज्ञ करवाया गया। तत्पश्चात् स्वामी विष्वङ् परिव्राजक जी ने व्याख्यान दिया। ब्र. उत्तम जी ने भजन सुनाया। कार्यक्रम का संचालन श्री वासुदेव आर्य ने किया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के पर्यावरण विभागाध्यक्ष डॉ. प्रवीण माथुर, अन्य प्रोफेसर, परोपकारिणी सभा की सदस्या श्रीमती ज्योत्स्ना 'धर्मवीर', प्रो. निरंजन साहू जी, स्वामी सोमानन्द जी, विश्वविद्यालय के छात्र-छात्रायें, गुरुकुल ऋषि उद्यान के आचार्य तथा ब्रह्मचारीगण, श्री नन्दकिशोर काबरा जी, वानप्रस्थी श्री रमेश मुनि, श्री लक्ष्मण मुनि एवं ऋषि उद्यान के अन्य साधकगण कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। डॉ. ऋतु माथुर ने सभी विद्वानों एवं आगन्तुकों को धन्यवाद दिया।

शिवरात्रि पर्व/ऋषि बोध दिवस सम्पन्न-ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में प्रातः काल विशेष यज्ञ के उपरान्त आचार्य कर्मवीर जी ने व्याख्यान दिया।

नगर आर्य समाज में स्वामी सोमानन्द जी ने व्याख्यान दिया और ब्र. उत्तम जी ने भजन सुनाया। कार्यक्रम में आर्य समाज के अधिकारी एवं सदस्य गण, आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान के ब्रह्मचारी, दयानन्द बाल सदन के बच्चे एवं अन्य नगरवासी उपस्थित रहे।

जन्मदिवस पर यज्ञ- ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में ६ फरवरी को श्री रमेश मुनि जी का जन्मदिन मनाया गया। ८ फरवरी को श्री रमेश मुनि जी की सुपौत्री कु. श्रुति बंसल सुपुत्री श्री अवनीश बंसल का जन्मदिन मनाया गया। परोपकारिणी सभा की ओर से यजमानों को जन्मदिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल आदि देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका-समाधान करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, ब्रह्मचारी, आर्यवीर, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, गृहस्थ स्त्री-पुरुष और बच्चे निरन्तर आते रहते हैं। पिछले १५ दिनों में कोटा, सूरत, दिल्ली, पंचकूला, पूर्वी चम्पारण, झज्जर, श्रीगंगानगर, भीलवाड़ा, कैथल, चरखी दादरी, गोवा से ५८ अतिथिगण आये। अमरोहा उ.प्र. से श्री सुमन कुमार वैदिक के नेतृत्व में ५५ स्त्री-पुरुषों का दल तथा 'आर्यावर्त केसरी' के सम्पादक डॉ. अशोक आर्य के नेतृत्व में १३५ व्यक्तियों का दल ऋषि बोधोत्सव हेतु टंकारा जाते समय ऋषि उद्यान पधारे।

दैनिक प्रवचन-प्रातः कालीन सत्संग में स्वामी विष्वङ् जी परिव्राजक, आचार्य कर्मवीर जी, स्वामी सोमानन्द जी और आचार्य सत्यप्रकाश जी के व्याख्यान हुए। सायंकालीन सत्संग में आचार्य कर्मवीर जी एवं आचार्य सत्यप्रकाश जी के व्याख्यान हुए। शनिवार सायंकालीन प्रवचन में श्री राजेश चौरसिया जी ने अपने विचार प्रस्तुत किये।

आर्यजगत् के समाचार

१. यजुर्वेद पारायण यज्ञ सम्पन्न- २४ से २८ जनवरी २०१८ तक पॉश कॉलोनी, देवीनगर के भरत आश्रम प्रांगण में स्वाइन फ्लू निवारण यज्ञ समिति जयपुर आर्यसमाज दक्षिण के तत्त्वावधान में यजुर्वेद पारायण भैषज यज्ञ का आयोजन हुआ। यज्ञ के होता बाबूलाल आर्य ने अपने ७५वें जन्म दिवस पर सपरिजन कुटुम्ब के साथ आहुतियाँ दी।

२. वार्षिकोत्सव सम्पन्न- गुरुकुल हरिपुर, जुनानी, जि. नुआपड़ा, ओडिशा का त्रिदिवसीय वार्षिक महोत्सव २७ से २९ जनवरी २०१८ तक अनेक प्रेरक कार्यक्रमों के साथ गुरुकुल के संचालक डॉ. सुदर्शन देव आचार्य के सान्निध्य में गुरुकुल के आचार्य, उपाचार्य एवं कर्मठ कार्यकर्ताओं के पुरुषार्थ से निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

डॉ. सुदर्शन देव आचार्य के द्वारा किये जा रहे आर्ष ग्रन्थों की रक्षा एवं पठन-पाठन कार्य हेतु आर्यसमाज सान्ताक्रुज मुम्बई की ओर से २८ जनवरी को आचार्य जी को 'पं. युधिष्ठिर मीमांसक स्मृति पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया, जिसमें तीस हजार की राशि, शॉल एवं श्रीफल

प्रदान किया गया।

३. प्रेरणा दिवस मनाया- महर्षि दयानन्द शिक्षण संस्थान एवं आर्यसमाज नेहरू ग्राउण्ड ने अपने संस्थापक अध्यक्ष महात्मा कन्हैयालाल महता की पुण्यतिथि 'प्रेरणा-दिवस' के रूप में के.एल. महता दयानन्द महिला महाविद्यालय में सम्पन्न की। प्रतिवर्ष होने वाली अन्तर्विद्यालय गायत्री एवं सन्ध्या-मन्त्र प्रतियोगिता में इस वर्ष प्रथम पुरस्कार के.एल. महता दयानन्द विद्यालय सेक्टर १७ एवं सेक्टर ७, द्वितीय पुरस्कार सेक्टर १६ विद्यालय एवं ३६ विद्यालय, तृतीय पुरस्कार २६/२७ विद्यालय तथा सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार के.एल. महता दयानन्द पब्लिक सी.सै. स्कूल नेहरू ग्राउण्ड ने प्राप्त किया।

४. हवन महोत्सव मनाया- २८ जनवरी २०१८ को महर्षि दयानन्द शिक्षण केन्द्र झज्जर के तत्त्वावधान में मौ. भट्टी गेट में श्रीमती अनिल देवी एवं श्री विजय आर्य की २५वीं विवाह वर्षगांठ के अवसर पर २५ कुण्डीय हवन महोत्सव एवं वैदिक भजन-प्रवचन-अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया गया। मुकेश आर्य यज्ञ के ब्रह्मा रहे।

५. ऋषि बोध दिवस मनाया- दि. १३ फरवरी को केसरगंज स्थित आर्यसमाज अजमेर के तत्त्वावधान में ऋषि दिवस धूमधाम से मनाया गया, जिसमें मुख्य अतिथि स्वामी सोमानन्द सरस्वती व मुख्य वक्ता श्री चन्द्रकान्त शास्त्री रहे। संचालक मन्त्री श्री चान्दराम आर्य ने किया।

६. वाल्मीकि पुरस्कार- आर्यजगत् के महोपदेशक विद्वान् एवं संस्कृत भाषा के कवि तथा लेखक डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री को उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी ने २०१७ का संस्कृत भाषा में उल्लेखनीय योगदान के कारण अथवा दूसरा सबसे बड़ा २०१०००/- (दो लाख एक हजार रु.) का वाल्मीकि पुरस्कार प्रदान किया है। यह पुरस्कार मुख्यमन्त्री श्री आदित्यनाथ योगी ने राज्यपाल श्री एम. नाइक की उपस्थिति में दि. ७ फरवरी २०१८ को एक विशिष्ट समारोह में प्रदान किया। ज्ञातव्य है कि डॉ. शास्त्री को संस्कृत भाषा के साहित्य में मौलिक योगदान एवं शास्त्री पाण्डित्य के लिए राष्ट्रपति-सम्मान एवं साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्रदान किया जा चुका है।

परोपकारी परिवार की ओर से इस अवसर पर हार्दिक शुभकामना एवं बधाई प्रदान की जाती है।

७. ऋषि बोध दिवस मनाया- आर्यसमाज हिरण मगरी, उदयपुर, राज. की ओर से महर्षि दयानन्द सरस्वती के बोध दिवस (महाशिव रात्रि) पर विशेष यज्ञ, सत्संग सभा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि वक्ता आर्यसमाज पिछोली के मन्त्री डॉ. सत्यप्रिय शास्त्री ने बोध दिवस की महत्ता पर प्रकाश डाला।

आर्यसमाज हिरण मगरी, आर्यसमाज पिछोली एवं महर्षि दयानन्द कन्या विद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में महर्षि दयानन्द सरस्वती की जयन्ती के अवसर पर समाजजनों, छात्राओं एवं अध्यापकों ने सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जागरण रैली निकाली।

८. वार्षिकोत्सव सम्पन्न- गुरुकुल नवप्रभात आश्रम नुँआपालि, जिला बरगड़ ओडिशा का १६वाँ वार्षिकोत्सव स्वामी विवेकानन्द के ब्रह्मत्व में ३० व ३१ जनवरी को मनाया गया।

९. जन्मोत्सव मनाया- आर्यसमाज लाडनूँ, राज. में महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्मोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर शोभायात्रा में दयानन्द सरस्वती विद्यालय एवं मदनलाल भँवरी देवी आर्य मेमोरियल विद्यालय के लगभग ३०० छात्र-छात्राओं के साथ शहर के मुख्य मार्गों में रेली निकाल गई।

शोक समाचार

१०. स्व. श्री रमेशचन्द हेड़ा की धर्मपत्नी व अध्यक्ष अजमेर विकास प्राधिकरण के श्री शिवशंकर हेड़ा की भाभीजी **श्रीमती सीता देवी** का देहावसान दि. १३ फरवरी २०१८ को हो गया, जिनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न किया गया। श्रीमती सीता देवी धार्मिक व विदुषी महिला थीं। परोपकारिणी सभा दिवंगत आत्मा को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि देते हुए उनकी आत्मा की शान्ति हेतु प्रभु से प्रार्थना करती है। भगवान इनके परिवार को दुःख सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

११. आर्यजगत् के विद्वान् एवं साहित्यिक डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे की माता **श्रीमती त्रिवेणी बाई लोखण्डे** का दि. ३१ जनवरी २०१८ को ८६ वर्ष की आयु में हृदयावरोध के कारण निधन हो गया। उनका वैदिक पद्धति से अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। वे धर्म परायणा तथा वैदिक सिद्धान्तों में श्रद्धा रखने वाली थीं। उनके पति स्व. रामस्वरूप लोखण्डे हैदराबाद मुक्ति संग्राम के सेनानी रहे हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।